अध्याय–7

राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम एवं एकीकरण

स्वाधीनता संग्राम– 1857 से 1947 तक

व्यापार के बहाने ईस्ट इण्डिया कंपनी भारत आई, उसके साथ अन्य यूरोपीय जातियाँ भी आई किन्तु अंग्रेजों को अधिक सफलता मिली। अंग्रेजों को एक लाभ यह मिला कि मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत छोटे–छोटे राज्यों एवं रियासतों में बंट गया। यह छोटे–छोटे राज्य आपस में लड़ते रहते थे। राजाओं की आपसी फूट का लाभ उठाकर इस्ट इण्डिया कंपनी ने भारत पर अपना शासन स्थापित कर लिया। लार्ड डलहौजी के शासनकाल में देशी रियासतों में अंग्रेज रेजीडेन्ट का प्रभाव बढ़ गया और रेजीडेन्ट सुरक्षा, कर्ज तथा दत्तक पुत्र का बहाना बनाकर देशी रियासतों को हड़पने लगे।इससे नाराज होकर कई राजा एवं जागीरदार भी अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के लिए तत्पर हो उठे।

अखिल भारतीय स्तर पर जहॉ 1857 में क्रान्ति का बिगुल बज उठा तो उसमें मंगल पाण्डे, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई व तॉत्या टोपे जैसे क्रान्तिकारियों ने हुंकार भरी– उसी ज्वाला की एक चिनगारी राजस्थान में भी भड़क उठी तथा राज्य की जनता ने उत्साह के साथ क्रान्तिकारियों को क्रान्ति में सहयोग किया।

किसी भी देश में राजनैतिक चेतना आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं होती। इसके लिए दीर्घ काल तक साधना और प्रयत्न करने पड़ते हैं।

राजस्थान में जनजागृति के कारण– इस नव राजनीतिक चेतना के कुछ प्रेरक तत्व इस प्रकार हैं–

1. स्वामी दयानंद सरस्वती व उनका प्रभाव– आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द स्वदेशी व स्वराज्य का शंख फूँकने वाले पहले समाज सुधारक थे। 1865 ई. में वे करौली, जयपुर व अजमेर आये। उन्होंने स्वधर्म, स्वदेशी, स्वभाषा व स्वराज्य का सूत्र दिया, जिसे शासक व जनता ने सहर्ष अनुमोदित किया। 1888–1890 ई. के बीच आर्य समाज की शाखाएँ राजस्थान में स्थापित की गई एवं ''वैदिक यंत्रालय'' नामक छापाखाना अजमेर में स्थापित किया गया। 1883 ई. में स्वामी जी ने उदयपुर में ''परोपकारिणी सभा'' की स्थापना की, जो बाद में अजमेर स्थानान्तरित हो गई। इस प्रकार स्वराज्य के लिये प्रेरणा देने का प्रारम्भिक कार्य आर्य समाज ने किया।

2. समाचार पत्रों व साहित्य का योगदान– राजनीतिक चेतना के प्रसार में समाचार पत्रों का योगदान उल्लेखनीय है। 1885 ई. में राजपूताना गजट, 1889 ई. में राजस्थान समाचार, प्रारम्भिक समाचार पत्र थे। 1920 ई. में पथिक ने ''राजस्थान केसरी'' का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसने अंग्रेजी नीतियों के खिलाफ अपना स्वर ऊँचा किया। 1922 ई. में राजस्थान सेवा संघ ने ''नवीन राजस्थान'' नामक अखबार निकाला, जिसने कृषक आन्दोलनों के पक्ष में आवाज उठाई। 1943 ई. में नवज्योति, 1939 ई. में नवजीवन, 1935 ई. में जयपुर समाचार, 1943 ई. में लोकवाणी इत्यादि समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान की समस्याओं व आन्दोलनों का खुलासा किया व इनके लिए राष्ट्रीय सहमति बनाई।

इसी प्रकार ठाकुर केसरी सिंह बारहठ, जयनारायण व्यास, पं. हीरालाल शास्त्री की कविताओं में देश प्रेम अपनी चरम सीमा पर परिलक्षित होता है। अर्जुनलाल सेठी की कृतियों ने वैचारिक क्रांति उत्पन्न की। इस संदर्भ में महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा रचित ''वीर सतसई'' का उद्धरण विस्मृत नहीं किया जा सकता है जिसमें वीर रस व स्वदेश प्रेम का अनूठा सम्मिश्रण है।

3. मध्य वर्ग की भूमिका– यद्यपि राजस्थान का साधारण मनुष्य भी विद्रोह की सामर्थ्य रखता था, फिर भी एक योग्य नेतृत्व उसे मध्यम वर्ग से ही मिला, जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त था। यह नेतृत्व शिक्षक, वकील व पत्रकार वर्ग से आया। जयनारायण व्यास, मास्टर भोलानाथ, मघाराम वैद्य, अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक आदि इसी मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि थे।

4. प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव– राजस्थान के लगभग सभी राज्यों

की सेनाओं ने प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया। जो सैनिक लौटकर आये उन्होंने अपने अनुभव बांटे—नई वैचारिक क्रांति से राजस्थान

लगभग एक हजार मेवाड़ के सैनिकों ने क्रान्तिकारियों का पीछा किया परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। संभवतः इसका कारण यह था कि मेवाड़ और मारवाड़ के जागीरदारों ने नसीराबाद के विप्लवकारियों को अपने प्रदेश में से आसानी से गुजर जाने दिया। यह तथ्य इस बात का संकेत था कि मेवाड़ और मारवाड़ की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी।

12 जून, 1857 को डीसा से यूरोपीय सेनाओं की प्रथम टुकड़ी नसीराबाद पहुंची और 10 जुलाई, 1857 को एजेन्ट गवर्नर जनरल के द्वारा इस टुकड़ी को नीमच भेज दिया गया। इस घटना ने नसीराबाद स्थित सैनिकों में पुनः असंतोष को जन्म दिया। 12वीं बम्बई नेटिव इन्फेन्टरी के सैनिक अत्यधिक उत्तेजित हो उठे, परन्तु उन्हें शीघ्र ही निःशस्त्र कर दिया गया। 10 अगस्त, 1857 को बम्बई केवेलरी के सैनिकों ने अपने कमांडर के आदेश को मानने से इनकार कर दिया और अपने अन्य साथियों को भी अपना अनुसरण करने को कहा परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कठोर कदम उठाए। एक सैनिक को तत्काल गोली मार दी गई। पांच और सैनिकों को फांसी पर लटका दिया गया तथा शेष सभी भारतीय सैनिकों को निःशस्त्र कर दिया गया। इस प्रकार नसीराबाद में पुनः सुलगती हुई क्रान्ति की आग को तत्काल दबा दिया गया।

नीमच में क्रान्ति

क्रान्ति का दूसरा केन्द्र नीमच बना, जहां 3 जून, 1857 को क्रान्ति फूट पड़ी। 2 जून को कर्नल अबोट ने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को गंगा और कुरान की शपथ दिलाई थी वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहेंगे, कर्नल अबोट ने स्वयं ने भी बाइबिल को हाथ में लेकर शपथ ली थी, जिससे कि वह अपने अधीन सिपाहियों का पूर्ण क्रान्ति प्राप्त कर सके परन्तु जब 3 जून, 1857 को नसीराबाद के क्रान्ति का समाचार नीमच पहुँचा तो उसी दिन रात्रि के 11 बजे वहाँ भी विप्लव हो गया। स्थल सेना ने समूची छावनी को घेर लिया और उसको आग लगा दी। यहां तक कि ब्रिगेडियर मेजर के बंगले तक को आग लगा दी गई। बंगलों पर तैनात सैनिकों ने क्रान्तिकारियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और कुछ समय बाद वे भी उनके साथ मिल गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 2 स्त्रियाँ तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुई और अनेक बच्चों को अग्नि की ज्वाला के भेंट कर दिया गया। ब्रिटिश स्त्री पुरुष और बच्चे जो लगभग संख्या में 40 थे, क्रान्तिकारियों के द्वारा घेर लिए गए। यदि उदयपुर (मेवाड़) के सैनिक उचित समय पर सहायता के लिए न पहुँचे होते तो संभवतः उनका जीवन भी समाप्त हो जाता। 5 जून को क्रान्तिकारियों ने आगरा होते हुए दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने आगरा जेल में बन्द सभी कैदियों को मुक्त कर दिया और सरकारी खजाने में से एक लाख छब्बीस हजार नौ सौ रूपए लूटकर साथ ले चले, परन्तु आगरा का बाजार सुरक्षित रहा।

नीमच के क्रान्तिकारी देवली भी पहुंचे और उन्होंने छावनी को आग लगा दी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि देवली छावनी में कोई भी ब्रिटिश सैनिक हताहत नहीं हुआ, क्योंकि छावनी को पहले ही खाली किया जा चुका था और वहां से ब्रिटिश अधिकारियों को मेवाड़ स्थित जहाजपुर कस्बे में बसा दिया गया था। क्रान्तिकारियों ने कोटा रेजीमेन्ट के 60 व्यक्तियों को देवली छावनी से अपने साथ चलने के लिए बाध्य किया परन्तु रास्ते में ये सैनिक भाग निकलने में सफल हो गए और कुछ दिनों पश्चात् वापस देवली पहुँच गए।

आस–पास के अन्य स्थानों की स्थिति भी विस्फोटक होती जा रही थी। मालवा, महू, सलूम्बर इत्यादि स्थानों पर भी क्रान्तिकारियों के आक्रमण बढ़ते जा रहे थे। उदयपुर स्थित खेरवाड़ा और सलूम्बर की स्थिति अधिक नाजुक बन चुकी थी कि कैप्टन शावर्स के विचार में इन क्षेत्रों की रक्षा करना बहुत मुश्किल हो गया था।

12 अगस्त, 1857 को नीमच में द्वितीय केवेलरी के कमांडर कर्नल जेक्सन ने इस सूचना के आधार पर कि भारतीय सेना में विद्रोह होने वाला है और उनकी योजना समस्त यूरोपीय अधिकारियों की हत्या कर देने की है, यूरोपीय सैनिकों को बुला भेजा। इस घटना ने नीमच स्थित भारतीय सैनिकों को उत्तेजित कर दिया और परिणामतः वहां पुनः क्रान्ति की ज्वालाएं धधकने लगीं। उत्तेजना में एक यूरोपीय सिपाही की हत्या कर दी गई। दो अन्य सिपाही घायल हुए और लेफ्टीनेन्ट व्लियेयर किसी यूरोपीय की बन्दूक से ही घायल हो गए। सैनिकों ने कर्नल जेक्सन के आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया। यहां तक कि यूरोपीय अधिकारियों के मध्य भी आदेश दिए जाने सम्बन्धी वाद–विवाद उठ खड़े हुए, अतः यह निश्चय किया गया कि नीमच के क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए और अधिक सैनिक बुलाए जाए। परन्तु इसी बीच उदयपुर की सहायता से क्रान्ति को दबा दिया गया।

आऊवा (मारवाड) ठिकाना व ठाकुर खुशाल सिंह का नेतृत्व

अगस्त, 1857 में क्रान्ति की ज्वालाए समस्त राज्य में फैलने लगीं। 21 अगस्त को एरनपुरा स्थित जोधपुर सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और उन्होंने अपने अधिकारियों के आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया। परिणामतः लैफ्टीनेंट कारमोली को क्रान्तिकारियों के साथ चलने के लिए बाध्य होना पड़ा, यद्यपि तीन दिन पश्चात् क्रान्तिकारियों ने उन्हें रिहा कर दिया। भील सैनिकों ने भी क्रान्तिकारियों का साथ दिया और ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग करने से इनकार कर दिया। क्रान्तिकारियों ने अनेक ब्रिटिश नागरिक एवं परिवारों को अपनी हिरासत में ले लिया, यद्यपि कुछ समय पश्चात् उन्हें भी रिहा कर दिया। तत्पश्चात् आऊवा के ठाकुर खुशाल सिंह ने भी क्रान्तिकारियों को सहयोग देना प्रारम्भ किया, इसका मुख्य कारण यह था कि पिछले कुछ वर्षों से ठाकुर खुशालसिंह और जोधपुर महाराजा के आपसी संबंध तनावपूर्ण थे और वर्तमान परिस्थितियों में ठाकुर खुशालसिंह ने अवसर से लाभ उठाना चाहा।

8 सितम्बर, 1857 को महाराजा जोधपुर की सेनाओं और क्रान्तिकारियों एवं आऊवा के ठाकुर की सशस्त्र सेनाओं के मध्य पाली के समीप बिठोड़ा व चेलावास में संघर्ष हुआ, महाराजा जोधपुर की सेनाओं को न केवल पराजय का ही मुँह देखना पड़ा अपितु उनके अधिकांश अस्त्र–शस्त्र क्रान्तिकारियों के हाथ लगे। जोधपुर किले के किलेदार अनारसिंह और महाराजा के अनेक विश्वासपात्र सहयोगी इस युद्ध में काम आए, यहां तक कि

लैफ्टीनेंट हैटकोच जिसे कि राजस्थान में ब्रिटिश एजेन्ट गर्वनर जनरल लारेन्स ने भेजा था, बड़ी मुश्किल से अपना बचाव कर सका। उसकी समस्त सम्पत्ति क्रान्तिकारियों द्वारा लूट ली गई। इन गंभीर परिस्थितियों को देखते हुए स्वयं जनरल लारेन्स ने आऊवा की ओर कूच करने का निश्चय किया। उसने ब्यावर के समीप सशस्त्र बटालियन तैयार की और आऊवा की ओर चल पड़ा। 18 सितम्बर को जनरल लारेन्स के नेतृत्व में ब्रिटिश सशस्त्र सेनाओं ने आऊवा पर असफल आक्रमण किया, विप्लवकारी सैनिकों ने न केवल आक्रमण को ही विफल किया अपितु अनेक ब्रिटिश अधिकारियों का, जिनमें जोधपुर स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट मौक मेसन एवं एक यूरोपीय अधिकारी भी शामिल था, मार डाला, साथ ही साथ जोधपुर सेना के अनेक सैनिक भी क्रान्तिकारियों के हाथों मारे गए और बंदी बना लिए गए। क्रान्तिकारियों ने मौकमेसन का सर धड़ से अलग करके आऊवा के किले पर लटका दिया जो एक प्रकार से उनकी विजय का प्रतीक था। जनरल लारेन्स को पीछे हटना पड़ा और आऊवा से लगभग तीन मील दूर एक गांव में शरण लेनी पड़ी, तदुपरांत वह अजमेर वापस आया।

गंभीरता से लिया, इसका कारण यह था कि इस घटना का समूचे राजस्थान पर व्यापक प्रभाव पड़ सकता था। अतः ब्रिटिश सरकार ने आदेश दिया कि हर कीमत पर आऊवा ठाकुर को कुचल दिया जाना चाहिए। उधर दूसरी ओर, क्रान्तिकारियों ने रिसालदार, अब्दुल अली, अब्बास अली खॉं, शेख मोहम्मद बख्श और हिन्दू और मुसलमान सिपाहों के नाम पर मारवाड़ और मेवाड़ की जनता से अपील की कि वह उनकी हर संभव सहायता करे। ठाकुर खुशालसिंह ने भी मेवाड़ के प्रमुख जागीरदार ठाकुर समंदसिंह से ब्रिटेन के विरूद्ध सहायता देने का प्रस्ताव किया, ठाकुर समंदसिंह ने और मारवाड़ के अनेक प्रमुख

आपको इस घटना से बिल्कुल अलग बताया, उन्होंने मेजर बर्टन की नृशंस हत्या पर दुःख प्रकट करते हुए ब्रिटेन से क्षमा–याचना की। साथ ही साथ उन्हें ब्रिटेन से यह भी अनुरोध किया कि कोटा से क्रान्तिकारियों को हटाने में ब्रिटिश सैनिक सहायता तुरंत भेजी जाय। वास्तविकता यह थी कि कोटा पर पूर्णतः क्रान्तिकारियों का नियंत्रण था और कोटा महाराव एक प्रकार से अपने ही किले में बंदी थी। अंततः मार्च, 1858 में मेजर जनरल रोबर्ट्स के नेतृत्व में 5500 सैनिकों की एक टुकड़ी क्रान्तिकारियों का सफाया करने के लिए भेजी गई। 29 मार्च को नगर पर आक्रमण आरम्भ हुआ परन्तु क्रान्तिकारी बच निकले और उनका केवल एक सैनिक हरदयाल मारा गया। ब्रिटिश सैनिकों ने गोलाबारी की सहायता से नगर में प्रवेश किया,पर अत्याचार किए और समूचे नगर को धूल–धूसरित कर दिया।

मेवाड़ ठिकाने का अप्रत्यक्ष सहयोग – अंग्रेजी सरकार ने मेवाड़ के सामन्तों के प्रभाव और परम्परागत अधिकारों को कम कर दिया था। नसीराबाद के सैन्य विद्रोह की सूचना उदयपुर पहुँची तो वहां भी जनता ने अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध भावना प्रदर्शित की। अंग्रेज कप्तान शार्वस को कठोर शब्द कहे। सलूम्बर ठाकुर कुशालसिंह और कोठारिया के रावत जोधसिंह ने मारवाड़ के अंग्रेज विरोधी आऊवा ठाकुर और सैनिकों की भी सहायता की। ताँत्या टोपे की भी रसद देकर सहायता की। परन्तु मेवाड़ के सामन्त अंग्रेजी सेना के बढ़ते दबाव, धमकियों और कठोर दमन नीति के कारण प्रत्यक्ष विद्रोह नहीं कर पाए।

अन्य राज्यों का योगदान– जयपुर, टोंक, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, डूंगरपुर आदि राज्यों में भी अंग्रेज विरोधी भावना विद्यमान रही। भरतपुर की सेना, गुर्जर तथा मेव जनता ने भी खुल कर विद्रोह में भाग लिया। जयपुर की जनता ने रास्ते से गुजरती अंग्रेजी सेना को अपमानित कर अंग्रेज विरोधी भावना व्यक्त की। टोंक के नवाब की सेना ने भी विद्रोह किया। बकाया वेतन वसूला तथा दिल्ली गए।

तांत्या टोपे का राजस्थान ठहराव– 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में तांत्या टोपे का राजस्थान आगमन महत्वपूर्ण घटना है। तांत्या टोपे की इस यात्रा ने जागीरदारों सैनिकों तथा जन–साधारण में उत्तेजना का संचार किया। ग्वालियर में असफल होने पर तांत्या टोपे सहायता की आशा में हाड़ौती होते हुए जयपुर की ओर बढ़ा। सहायता न मिलने पर वह लालसोट होते हुए टोंक आ गया। ब्रिगेडियर होम्स उसका पीछा कर रहा था। टोंक में सेना ने उसका समर्थन किया। यहां से वह सलूंबर चला गया। सलूंबर के रावत ने उसकी सहायता की। अंग्रेजों को तांत्या टोपे ने 9 अगस्त 1858 को हराया पाँच दिन बाद बनास नदी के तट पर पुनः तांत्या टोपे की पराजय हुई। इसके बाद तांत्या हाड़ौती में आ गया तथा सने झालरापाटन पर अधिकार कर लिया। स्थानीय जनता ने उसे पूर्ण सहयोग दिया। लेकिन इसके बाद सितंबर माह में ही अंग्रेजों ने उसे दो बार हराया। विवश तांत्या टोपे राजस्थान से चला गया।

दिसम्बर 1858 ई. में तांत्या टोपे पुनः राजस्थान आया तथा बांसवाड़ा पर अधिकार कर लिया। यहां से वह सलूंबर आया। यहां उसे पूरी सहायता दी गई। तांत्या टोपे दौसा तथा सीकर भी गया। यहां अंग्रेजी सेनाओं ने उसे पराजित कर खदेड़ दिया। नरवर के जागीरदार मानसिंह ने विश्वासघात करके तांत्यां टोपे को अंग्रेजों के हाथों पकड़वा दिया। अप्रैल 1859 ई. में तांत्या टोपे को फाँसी दे दी गई।

क्रान्तिकारियों का अविस्मरणीय योगदान

सन् 1905 के बाद बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों को अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने स्वीकार न करते हुए दमन चक्र तेज कर दिया। देशी राज्यों ने भी अंग्रेजी रूख को देखते हुए अपनी रियासतों में सभी राष्ट्रवादी गतिविधियों पर अपना शिकंजा कस दिया। राजस्थान क्षेत्र में जहां राजनीतिक व्यवस्था उत्तरदायित्वहीन नौकरशाही पर आधारित थी, वहीं दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था सामंतवाद पर टिकी थी। ऐसी परिस्थितियों में आर्य समाज जैसी सामाजिक संस्थाओं ने राजनीतिक चेतना जागृत करने का बीड़ा उठाया। बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियाँ जोर पकड़ने लगी। बंगाल में सक्रिय इन क्रान्तिकारियों ने राजपूताना में भी सम्पर्क स्थापित करके अपने कार्य क्षेत्र को विस्तार दिया। इन क्रान्तिकारियों में विजय सिंह 'पथिक', पं. अर्जुनलाल सेठी, केसरी सिंह बारहठ, राव गोपाल सिंह खरवा आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

विजय सिंह पथिक– बिजौलिया आंदोलन का नेतृत्वकर्ता विजय सिंह 'पथिक' का मूल नाम भूपसिंह था। बिजौलिया आने से पूर्व वे एक क्रांतिकारी थे, वे रास बिहारी बोस के अनुयायी थे। रास बिहारी बोस ने देश व्यापी क्रान्ति के लिये उन्हें राजस्थान भेजा। किन्तु क्रान्ति असफल होने के कारण वे पकड़े गये और टाटगढ़ की जेल में बंद कर दिये गये। छूटने के बाद वे चित्तौड़ के ओछड़ी गाँव में बस गए। उन्होंने ही बिजौलिया आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया। कृषकों की समस्याओं का उन्होंने 'प्रताप' समाचार पत्र के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर प्रचारित किया। 1919 में वर्धा में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की और 1920 में उसे अजमेर स्थानान्तरित कर दिया। ''नवीन राजस्थान'' समाचार पत्र का प्रकाशन भी अजमेर से शुरू हुआ। 1922 में पथिक जी के प्रयासों से कृषकों व प्रशासन के बीच समझौता हुआ। बिजौलिया का आंदोलन जब बेगूं में फैला तो पथिक जी ने वहां के आन्दोलन की भी बागडोर संभाली और उन्हें तीन साल के लिये कारावास की सजा दे दी गई। कारावास से छूटने के बाद वे निर्वासित कर दिए गए। 1927 में जब बिजौलिया में माल भूमि छोड़ने का प्रश्न उठा तो पथिक जी ने कृषकों को भूमि छोड़ने की सलाह दी। वे सम्भवतः बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों को भांप नहीं पाये। भूमि जब्त होने पर किसानों का मनोबल टूटा। पथिक जी के हाथों से नेतृत्व निकल कर अखिल भारतीय स्तर पर स्थानान्तरित हो गया।

पं. अर्जुन लाल सेठी– 1880 ई. में जयपुर में जन्मे अर्जुनलाल सेठी प्रारंभिक काल में चौमू ठिकाने के कामदार नियुक्त हुए। किन्तु देशभक्ति की भावना के कारण अपने पद से त्याग पत्र देकर उन्होंने 1906 ई. में जैन शिक्षा प्रचारक समिति की स्थापना की, जिसके तत्वाधान में जैन वर्धमान पाठशाला स्थापित की गई। 1907 ई. में अजमेर में जैन शिक्षा सोसायटी की स्थापना की, जो 1908 ई. में जयपुर स्थानान्तरित कर दी गई। अर्जुनलाल सेठी ने

बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया व 1907 ई. की सूरत कांग्रेस में भी भाग लिया। धीरे–धीरे वर्धमान विद्यालय क्रान्तिकारियों का प्रशिक्षण केन्द्र बन गया। 12 दिसम्बर 1912 ई. को भारत के गर्वनर जनरल लार्ड हॉर्डिंग्स के जुलूस पर बम फैंके जाने की घटना के पीछे रूपरेखा सेठी जी की ही थी। इस घटना के मुख्य आरोपी जोरावर सिंह बारहठ सेठी के ही शिष्य थे। 20 मार्च 1913 ई. के आरा हत्याकांड में भी सभी आरोपी सेठी जी के घनिष्ठ थे। इस प्रकार राजपूताना की क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालक सेठी जी थे। तत्कालीन ए.जी.जी. सी. आर्मस्ट्रांग ने 1914 ई. में जयपुर सरकार को सेठी जी की गतिविधियों के बारे में सावधान किया। उनके जयपुर राज्य में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। काकोरी कांड के मुख्य आरोपी अशफाकउल्ला खां को सेठी जी ने ही राजस्थान में छुपाया।

लम्बे समय तक आरा हत्याकांड व दिल्ली षड़यंत्र के आरोप में वे नजरबंद रहे। बंदी बनाकर उन्हें वैलूर (मद्रास प्रेसीडेंसी) भेजा गया, जहॉं दुर्व्यवहार के कारण वे 70 दिन अनशन पर रहे। जब 1919 ई. में वे रिहा हुए तो 1920 ई. की नागपुर कांग्रेस को सफल बनाने में जुट गये। इस प्रकार क्रान्तिकारी गतिविधियें के बाद उन्होंने कांग्रेस की नीतियों को समर्थन देना आरम्भ किया। असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण 1921 ई. में वे पुनः बंदी बनाये गये। 1930 ई. के सत्याग्रह आंदोलन में वे राजपूताना के प्रान्तीय डिक्टेटर नियुक्त किये गये व 1934 ई. में वे राजपूताना व मध्य भारतीय प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रांतपति चुने गये। नीति सम्बंधी मतभेदों के चलते उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया।

सेठी जी अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति कुशल संचालक व ओजस्वी वक्ता थे। जब उन्हें जयपुर के प्रधानमंत्री का पद प्रस्तावित किया गया तो उन्होंने कहा "श्रीमान् अर्जुनलाल नौकरी करेगा तो अंग्रेजों को कौन निकालेगा?" अर्जुनलाल सेठी के राजनीतिक कद का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब गांधीजी अजमेर आये तो स्वयं सेठी जी से मिलने उनके निवास स्थान पहुंचे। कुशल वक्ता होने के अतिरिक्त उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं, जैसे शूद्र मुक्ति व स्त्री मुक्ति। एक नाटक 'महेन्द्र कुमार' भी लिखा व मंचित करवाया। वे आजीवन सांप्रदायिक सद्भाव के लिये प्रयासरत रहे। 22 सितम्बर 1941 ई. को अजमेर में उनका देहान्त हो गया।

सागरमल गोपा– जैसलमेर में जन–जागृति का श्रेय सर्वप्रथम सागरमल गोपा को जाता है। 1940 ई. में उन्होंने जैसलमेर का गुण्डाराज नामक पुस्तक छपवाकर वितरित की। इस पर दरबार (महारावल) द्वारा निवासित होकर वे नागपुर चले गऐ। 1941 ई में पिता की मृत्यु पर जब गोपा जी जैसलमेर आये तो उन्हें 1942 ई. में छः वर्ष कठोर कारावास की सजा दी गई।

जेल में उन्होंने अमानवीय व्यवहार के बारे में जय नारायण व्यास को पत्र भेजे। 3 अप्रैल 1942 ई. को गोपा जी के जेल में ही तेल डालकर जला कर मार डाला गया। इस एक घटना ने जैसलमेर के जन–मानस को झकझोर डाला और निरकुंश शासन का विरोध तीव्र हो गया और अन्ततोगत्वा प्रजा मण्डल के नेतृत्व में आजादी का सूरज उदय हुआ।

दामोदर दास राठी (1882–1918)– राजस्थान के अग्रणी स्वतंत्रता प्रेमियों में दामोदर दास राठी का नाम लिया जाता हे। ये उद्योगपति थे और राव गोपाल सिंह व अरविन्द घोष के सम्पर्क में रहे। इन्होंने ब्यावर में आर्य समाज व होम रूल आंदोलन की शाखा खोली। तिलक की उग्र नीति के ये प्रबल समर्थ थे।

स्वामी गोपाल दास (1882–1939)– इन्होंने बीकानेर क्षेत्र के चुरू क्षेत्र में स्वतंत्रता की अलख जगाकर हितकारिणी सभा की स्थापना के साथ–साथ इन्होंने शिक्षा की प्रगति के लिए भी कार्य किये। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में जब बीकानेर के महाराजा के विरूद्ध अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं ने पर्चे बाटे तो स्वदेश लौटकर महाराजा ने सभी सावर्जनिक नेताओं को बिना मुकदमें चलाए बंदी बना दिए जिसमें स्वामी गोपाल दास भी सम्मिलित थे।

केसरी सिंह बारहठ– केसरी सिंह बारहठ का जन्म 21 नवम्बर 1872 ई. को मेवाड़ राज्य की शाहपुरा रियासत के ठिकाना देवपुराखेड़ा में हुआ। अपने पिता से उन्होंने विदेशी दासता के प्रति विरोध सीखा। मेवाड़ के महाराणा के विश्वस्त बन कर उन्होंने श्यामकृष्ण वर्मा को 1893 ई. में मेवाड़ आमंत्रित किया। यह कदम अंग्रेजों को सहन नहीं हुआ और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के कहने पर उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। 1900 ई. में कोटा के महाराव के आग्रह पर वे कोटा आ गये और 1902 ई. से 1907 ई. तक कोटा राज्य में 'सुपर इन्टेंडेंट ऐथिनोग्राफी' पद पर कार्य करते रहे। उनका संपर्क निरन्तर अर्जुनलाल सेठी व गोपाल सिंह खरवा से बना रहा और शीघ्र ही वे रासबिहारी बोस के विश्वासपात्र बन गये। राजस्थान में सशस्त्र क्रांतिकारी दल के संगठन का पूर्ण दायित्व केसरी सिंह पर आ गया। उन्होने सशस्त्र क्रांति के लिये साधन जुटाने व लड़ाकू सैनिक जातियों को संगठित करने का कार्य आरंभ किया। शीघ्र ही उनकी प्रतिष्ठा कवि, लेखक व राष्ट्र सेवक के रूप में फैल गई।

1903 ई. में जब महाराणा फतेहसिंह ने दिल्ली दरबार में जाने की स्वीकृति दी तो केसरी सिंह ने इस कृत्य की निंदा स्वरूप महाराणा को 13 सोरठ 'चेतावनी री चूंगट्या' भेजे जो उन्हें रेलमार्ग से जाते समय मिले। इन्हें पढ़ कर महाराणा का मंतव्य बदल गया और दिल्ली पहुंचकर भी वे दरबार में सम्मिलित नहीं हुए। इस घटना के बाद केसरी सिंह अंग्रेजों की आंख की किरकिरी बन गये। सरकारी गोपनीय रिपोर्ट के अनुसार उनके सम्बंध रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी जैसे क्रान्तिकारियों के साथ बताए गए। उन पर राजद्रोह, ब्रिटिश फौज के भारतीय सैनिकों को शासन के विरूद्ध भड़काने व षड़यंत्र में सम्मिलित होने के साथ–साथ प्यारेराम नामक साधु की हत्या का आरोप भी लगाया गया। उन्हें बीस वर्ष की सजा सुनाई गई और बिहार प्रान्त के हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में रखा गया। 1920 ई. में बारहठ जी ने जेल छूटने के बाद उन्होंने राजपूताना के ए.जी.जी. को पत्र लिखकर राजपूताना व

भ

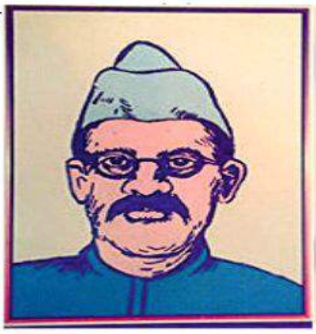

अर्जुनलाल सेठी

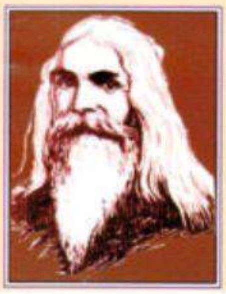

केसरी सिंह बारहठ

जोरावरसिंह बारहठ

प्रतापसिंह बारहठ

वी योजना प्रेषित की। 1929 ई. के बाद बारहठजी के विचार अहिंसात्मक हो गए। कांग्रेस के वर्धा अधिवेशन में वे आमंत्रित किये गये। 1941 ई. में उनका स्वर्गवास हो गया।

केसरी सिंह बारहठ हिन्दी भाषा के पक्षधर थे। उन्होंने क्षत्रिय जागीरदारों व उमरावों को परामर्श दिया कि वे मेयो कालेज के स्थान पर स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं में अपने बच्चों को शिक्षा दिलायें। 1904 ई. में उन्होंने क्षत्रिय कालेज की भी रूपरेखा बनाई किन्तु उसे समर्थन नहीं मिला। 1908 ई. में उन्होंने एक योजना द्वारा उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन करने के लिए इंग्लैंड के स्थान पर छात्रों को जापान भेजना प्रस्तावित किया। इस प्रकार स्वतंत्र प्रेम के साथ–साथ बारहठ जी ने मातृ भाषा व स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं के प्रोत्साहन में भी कोई कसर नहीं रखी।

प्रतापसिंह बारहठ– प्रतापसिंह अपने पिता केसरीसिंह बारहठ के पद्चिह्नों पर चलते हुए देश के लिए शहीद हो गए। प्रारम्भिक शिक्षा अर्जुनलाल सेठी से ग्रहण करने के बाद व्यावहारिक शिक्षा के लिये मास्टर अमीरचंद के पास रहे। राजपूताने की सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिको को भविष्य में सशस्त्र क्रान्ति हेतु तैयार करना आरंभ किया। 1912 ई. के दिल्ली कांड लार्ड हार्डिंग्स पर बम फैंके जाने के समय ये अपने चाचा जोरावर सिंह बारहठ के साथ मौजूद थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल, पिंगले व करतार सिंह सराबा जैसे प्रमुख क्रान्तिकारियों से इनका संपर्क हुआ। उन्होंने भारत सरकार के गृह सदस्य रेगीनाल्ड क्रैडोफ की हत्या की योजना बनाई पर विफल रहे। 1914–15 ई. में बनारस षड़यंत्र का आरोप तय किये जाने पर बरेली जेल में डाल दिए गए। कई प्रलोभनों के बावजूद इन्होंने पुलिस के सामने कोई भेद नहीं खोला। अमानुषिक अत्याचारों व दारूण यातनाओं के फलस्वरूप इनकी 24 मई 1918 ई. में जेल में ही मृत्यु हो गई। इनकी मृत्यु की सूचना कई वर्षों बाद उनके परिवारवालों को मिली।

जोरावर सिंह बारहठ– बारहठ परिवार के त्याग व बलिदान की कथा अतुलनीय है। केसरी सिंह के छोटे भाई जोरावरसिंह बारहठ का परिचय दिये बिना राजस्थान के क्रांतिकारियों का विवरण पूरा नहीं हो सकता। 1912 ई. में दिल्ली में वाइसराय हार्डिंग्स् के जुलूस पर बम फैंकने का दु:साहसिक कार्य जोरावर सिंह बारहठ का ही था। दिल्ली से भागने पश्चात् वे अहमदाबाद, बांसवाड़ा, डूंगरपुर होते हुए मालवा के पहाड़ों व जंगलों में भटकते रहे। आरा हत्याकांड में उनकी गिरफ्तारी के वारंट जारी हुए। 1939 ई. में वारंट रद्द हुए थे। उनका निधन 17 अक्टूबर 1939 ई. में कोटा में हुआ। पं. ज्वाला प्रसाद, बाबा नृसिंहदास, स्वामी कुमारानंद जैसे क्रांतिकारियों का योगदान भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

राव गोपाल सिंह खरवा– खरवा ठिकाने के ठाकुर राव गोपाल सिंह का जन्म 1872 ई. में हुआ। ये आरंभ से ही आर्य समाज से प्रभावित थे। धर्म महामण्डल के शिष्टमण्डल के सदस्य के रूप में जब ये बंगाल गये तो उनका सम्पर्क क्रान्तिकारियों से हुआ। 1907 में उन्होंने अजमेर में राजपूत छात्रावास खोला। राव गोपाल सिंह का नाम दिल्ली षड़यंत्र केस में सामने आया। उन पर यह भी आरोप लगाया कि वे जोधपुर व नसीराबाद के निचले स्तर के राजपूत सैनिकों के बीच ब्रिटिश विरोधी भावनायें फैला रहे हैं। दोनों ही कार्यवाहियों में उन पर कोई आरोप सिद्ध नहीं हो सका। डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट की धारा 3 के अन्तर्गत उन पर मुकदमा चलाया गया। कोटा के साधु हत्याकांड में भी वे संदेह के घेरे में थे। केसरी सिंह बारहठ के साथ मिलकर उन्होंने 'वीर भारत सभा' की स्थापना की। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रास बिहारी बोस ने सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई, जिसमें खरवा को राजस्थान में क्रान्ति का कार्य सौंपा गया। किन्तु योजना विफल हो गई। 24 जून 1915 ई. को इन्हें आदेशानुसार टाडगढ़ में जाकर रहना पड़ा। 10 जुलाई 1915 ई. को वे भाग निकले। गिरफ्तार होने के पश्चात् उनकी जागीर खरवा छीन ली गई। 1920 ई. में रिहा होने के बाद वे रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो गये और 1956 ई. में इनका देहावसान हुआ।

इन प्रमुख क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति का प्रयास कर विदेशी सत्ता को उखाड़ फैंकने का प्रयत्न किया। श्याम जी कृष्ण वर्मा (1857–1930) 1887 ई. से 1897 ई. के मध्य रतलाम, उदयपुर व जूनागढ़ राज्यों में दीवान पद पर रहे। वे स्वदेशी के प्रबल समर्थक थे। 1897 ई. में महाराष्ट्र में रैण्ड (प्लेग कमिश्नर, पूना) की हत्या में ये संदेह के घेरे में आए। यहां से बच कर इंग्लैण्ड पहुँचने पर इन्होने 'इंडिया हाऊस' व 'होम रूल सोसाइटी' की स्थापना की। परदेश में रहते हुए इन्होंने भारत की आजादी के लिये महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राजस्थान के अग्रणी स्वतंत्रता प्रेमियों में दामोदर दास राठी (1882–1918) का नाम लिया जाता है। ये उद्योगपति थे और राव गोपाल सिंह व अरविन्द घोष के सम्पर्क में रहे। उन्होंने

ब्यावर में आर्य समाज व होम रूल आंदोलन की शाखा खोली व एक सनातन धर्म शिक्षा संस्था की स्थापना की। तिलक की उग्र नीति के ये प्रबल समर्थक थे।

इन सभी क्रान्तिकारी गतिविधियों की विशेष बात यह थी कि ये सामाजिक सुधार व शिक्षा के प्रचार के साथ समानान्तर रूप में चल रही थीं। राजनीतिक हत्याएँ, धन सामग्री जुटाने व प्रभाव बढ़ाने का माध्यम थी। यद्यपि क्रान्तिकारियों का आन्दोलन जन साधारण में विशेष नहीं फैल पाया और गाँधीवादी साधन अधिक लोकप्रिय थे, फिर भी सामंती समाज की बदहाली, शासकों की उदासीनता व अंग्रेजों के दमन को उजागर करने में क्रांतिकारी सफल रहे।

स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के कारणः– 21 सितम्बर 1857 ई. को मुगल बादशाह बहादुर शाह उनकी बेगम जीनत महल तथा उनके पुत्रों को बंदी बनाकर रंगून भेज दिया गया। 1858 ई. के मध्य में क्रांति की गति काफी धीमी हो चुकी थी। तांत्या टोपे की गिरफ्तारी के साथ ही भारतीयों का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम राजस्थान में समाप्त हो गया।

राजस्थान में इस समय तीव्र ब्रिटिश विरोधी भावना दिखाई दी। जनता ने अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा का खुला प्रदर्शन किया। महाराणा से मिलने जाते समय उदयपुर की जनता ने कप्तान शावर्स को खुलेआम गालियॉं दी। जोधपुर की सेना ने कप्तान सदर लैण्ड के स्मारक पर पत्थर बरसाए। कोटा, भरतपुर, अलवर तथा टोंक की जनता ने शासकों की नीति के विरूद्ध क्रांतिकारियों का साथ दिया। फिर भी राजस्थान में क्रांति असफल हुई। इसके अधोलिखित कारण थे।

नेतृत्व का अभाव– राजस्थान 19 रियासतों में विभाजित था। अनेक स्थानों पर क्रांति होने पर भी विद्रोहियों का कोई सर्वमान्य नेतृत्व नहीं था। राजपूत शासकों ने मेवाड़ के महाराणा से संपर्क किया, किन्तु महाराणा ने इस संबंध में समस्त पत्र व्यवहार अंग्रेजों को सौंप दिया। मारवाड़ के सामंतों तथा सैनिकों ने मुगल बादशाह के नेतृत्व में संघर्ष का प्रयास किया। किन्तु मुगल बादशाह दिल्ली से बाहर राजस्थान में नेतृत्व प्रदान नहीं कर सका। फलतः क्रांतिकारी एकजुट होकर संघर्ष नहीं कर सके तथा उन्हें असफल होना पड़ा।

समन्वय का अभाव– राजस्थान में क्रांति का प्रस्फुटन अनेक स्थानों पर हुआ। लेकिन क्रांतिकारियों के बीच समन्वय का अभाव था। नसीराबाद, नीमच, आऊवा तथा कोटा के क्रांतिकारियों में सम्पर्क तथा तालमेल नहीं था। यही कारण है कि भारतीयों को सफलता प्राप्त नहीं हुई।

रणनीति का अभाव– क्रांतिकारियों के प्रयास योजनाबद्ध नहीं थे। विद्रोह के पश्चात् उनमें बिखराव आता चला गया। दूसरी ओर अंग्रेजों ने योजनाबद्ध ढंग से क्रांतिकारियों की शक्ति को नष्ट किया। अंग्रेजी सेनाओं का नेतृत्व कुशल सैन्य अधिकारी कर रहे थे। उनकी रसद तथा हथियारों की आपूर्ति संपूर्ण भारत से हो रही थी। जबकि क्रांतिकारी सैनिकों के पास साधनों का अभाव था। उदाहरणार्थ कोटा तथा धौलपुर के शासकों की क्रांति को दबाने के लिये अंग्रेजों के अतिरिक्त करौली तथा पटियाला से सहायता दी गई थी।

शासकों का असहयोग– राजस्थान के शासकों का सहयोग नहीं मिलना भी असफलता का प्रमुख कारण था। यही नहीं, राजस्थान के अधिकांश शासकों ने न केवल राजस्थान बल्कि राजस्थान के बाहर भी अंग्रेजों को पूर्ण सहायता प्रदान की। शासकों की इस अदूरदर्शी नीति ने उखड़ी हुई ब्रिटिश सत्ता की पुर्नस्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम

1857 ई. की क्रांति के परिणाम दूरगामी थे। इस क्रांति ने अंग्रेजों की इस धारणा को निराधार सिद्ध कर दिया कि मुगलों एवं मराठों की लूट से त्रस्त राजस्थान की जनता ब्रिटिश शासन की समर्थक है।

देशी राज्यों के प्रति नीति परिवर्तन– राजस्थान के शासकों ने क्रान्ति के प्रवाह को रोकने हेतु बाँध का कार्य किया था। अंग्रेज शासकों ने यह समझ लिया कि भारत पर शासन की दृष्टि से देशी राजा उनके लिये उपयोगी है। अतः अब ब्रिटिश नीति में परिवर्तन किया गया। शासकों को संतुष्ट करने हेतु ''गोध निषेध'' का सिद्धान्त समाप्त कर दिया गया। राजाओं की अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध किया जाने लगा। उनकी सेवाओं के लिए उन्हें पुरस्कार तथा उपाधियाँ दी गईं, ताकि उनमें ब्रिटिश ताज तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रति आस्था में वृद्धि हो सके।

सामंतों की शक्ति नष्ट करना– विद्रोह काल में सामंत वर्ग ने अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष किया। फलतः विद्रोह समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने सामंत वर्ग की शक्ति समाप्त करने की नीति अपनाई। सामंतों द्वारा दी जाने वाली सैनिक सेवा के बदले नगद राशि ली जाने लगी। फलतः सामंतों को अपनी सेनाएँ भंग करनी पड़ी। सामंतों से न्यायालय शुल्क लिया जाने लगा। उनके न्यायिक अधिकार छीन लिये गये, उनका राहदारी शुल्क वसूली का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया। ऐसे कानून बनाए गये जिनसे व्यापारी वर्ग अपना ऋण न्यायालय द्वारा वसूल कर सके। इस नीति के फलस्वरूप व्यापारी वर्ग तथा जनता पर सामंतों का प्रभाव समाप्त होने लगा।

नौकरशाही में परिवर्तन– सभी राज्यों के प्रशासन में महत्वपूर्ण पदों पर सामंतों का अधिकार था। क्रांति के बाद सभी शासकों ने सामंतों को शक्तिहीन करने तथा प्रशासन पर अपना नियंत्रण बढ़ाने के लिए नौकरशाही में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त, अनुभवी एवं स्वामी भक्त व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान की। इसके फलस्वरूप राजभक्त, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग का विकास हुआ।

यातायात के साधन– संघर्ष के समय में अंग्रेजों की सेनाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में कठिनाई का सामना करना पड़ा। विद्रोह के पश्चात् सैनिक तथा व्यापारिक हितों को ध्यान में रखते हुए यातायात के साधनों का विकास किया गया। नसीराबाद, नीमच, तथा देवली को अजमेर तथा आगरा से सड़कों द्वारा जोड़ दिया गया। रेल कम्पनियों को रेल मार्ग निर्माण हेतु प्रोत्साहित किय गया। अंग्रेज सरकार ने देशी राज्यों पर भी सड़कों तथा रेलों के निर्माण हेतु दबाव डाला, इसके फलस्वरूप यातायात के साधनों का त्वरित विकास हुआ।

सामाजिक परिवर्तन– अंग्रेजी सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विस्तार किया। दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा का महत्व बढ़ जाने के

फलस्वरूप मध्यम वर्ग का विकास हुआ। इस वर्ग ने अंग्रेजी शिक्षा लेकर प्रशासन तथा अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक स्वार्थों के कारण वैश्य वर्ग को संरक्षण प्रदान किया। कालान्तर में ब्राह्मण तथा राजपूत वर्ग का प्रभाव कम होता चला गया।

मेयो कॉलेज के माध्यम से राज परिवारों को पाश्चात्य विचारों व विलासिता में ढाला गया। अग्रेंज प्रत्येक ठिकानेदार से निश्चित कर व सैन्य खर्च लेते थे,पूर्व में अकाल आदि की स्थिति में अब कर माफ करना सम्भव नहीं था, अतः जनता से कर वसूली का दबाव बनाया।

राजस्थान में किसान आन्दोलन

अंग्रेजी शासन से पूर्व, राजस्थान के राज्यों में शासक, सामन्त और किसानों के परस्पर सम्बन्ध सहयोग, सद्भाव पर निर्भर थे। कालान्तर में अग्रेंजों ने मेयो कॉलेज के माध्यम से राज परिवारों को पाश्चात्य विचारों व विलासिता पूर्ण जीवन में ढाला। भूमि का स्वामित्व प्रमुखतः दो प्रकार का था। एक वह भूमि जो शासक के सीधे नियंत्रण में होती थी, उसे 'खालसा' भूमि कहा जाता था। दूसरी वह भूमि, जो सामन्तों (जागीरदारों, ठिकानेदारों) के नियन्त्रण में थी, वह जागीर भूमि, कही जाती थी। सामन्तों का अपनी जागीर की प्रजा पर पूरा अधिकार था। किसानों से भूमि–कर के अतिरिक्त भी कर लिए जाते थे, जिन्हें लागतें (लाग–बाग) कहा जाता था। बेगार भी करनी होती थी (कार्य के बदले अनाज मिलता था)। परन्तु अंग्रेजी नियंत्रण से पूर्व सामन्तों का सहयोगी व उदार दृष्टिकोण रहा। अकाल के समय यह देशी शासक लगान माफ कर दिया करते थे किन्तु अग्रेंजी शासन के निश्चित कर व सैन्य सेवा की वजह से इन्हें दबाव पूर्वक किसानो से कर वसूलना पडता था ।

20 वीं सदी के पूर्वाद्ध तक राज्यों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप और नियंत्रण बढ़ता गया। अंग्रेजी सरकार को नियमित खिराज़ (कर) देने और बढ़ते खर्चों तथा आर्थिक शोषण की नीति से किसानों से परम्परागत सम्बन्ध में बदलाव आ गया। किसानों पर नयी लागतें थोप दी तथा जबरदस्ती बेगार ली जाने लगी। शासकों और सामन्तों को बाहरी आक्रमणों का खतरा नहीं रहा। अंग्रेजी नियंत्रण से पश्चिमी प्रभाव पड़ा। फलतः शासकों और सामन्तों की जीवन शैली में परिवर्तन आने लगा। उनके खर्चे बढ़ गए। अपनी विलासिता और सुख–सुविधाओं के लिए किसानों का आर्थिक शोषण बढ़ गया। किसानों में बढ़ते असंतोष के परिणामस्वरूप संगठित किसान आन्दोलन हुए।

राजस्थान के किसान आन्दोलनों का राष्ट्रीय चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान रहा। किसान अत्याचारों और अमानवीय यातनाओं से नहीं डरे। स्त्रियों ने भी भाग लिया। लाग–बाग एवं बेगार प्रथा का विरोध किया। बिजौलिया, बेगूं, मारवाड़, शेखावाटी आदि स्थानों पर प्रमुख किसान आन्दोलन हुए।

बिजौलियां किसान आन्दोलन एवं विजयसिंह पथिक (1913–22)

भूमिका 1913 में पहले साधु सीताराम दास और बाद में विजयसिंह 'पथिक' के नेतृत्व में बिजौलिया–आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य जागीरदारों द्वारा बिजौलिया की जनता पर लगाए गए करों और विभिन्न 'लागबाग' के विरूद्ध आवाज उठाना था। विभिन्न त्यौहार एवं अवसरों पर जैसे फसल की कटाई, विवाह, जन्मदिन समारोह और जागीरदार के विभिन्न सामाजिक उत्सवों पर प्रत्येक किसान को एक निश्चित मात्रा में कर देना पड़ता था और मना करने की अवस्था में उसे भारी शारीरिक यातनाएं सहनी पड़ती थीं। इसी प्रकार बेगार प्रथा प्रचलित थी। परिणाम यह हुआ कि सुबह से शाम तक परिश्रम करने के बावजूद किसान के लिए भरपेट भोजन कर सकना असंभव हो गया था। अतः बिजौलियां के किसानों ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए एक वर्ष तक के लिए खेती करना स्थगित कर लिया और साथ ही साथ भू–राजस्व देने से मना कर दिया।इस समय आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीताराम दास कर रहे थे परन्तु इसी बीच 1915 में वे चित्तौड़ में विजयसिंह 'पथिक' से मिले और उनसे आन्दोलन का नेतृत्व संभालने का अनुरोध किया। साधु सीताराम दास ने जागीरदारों द्वारा असहाय जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों की कहानी सुनाई। पथिक ने नेतृत्व संभालना स्वीकार किया और इस प्रकार बिजौलिया आन्दोलन को एक नया उत्साही और साहसी नेता मिला।

1916 में बिजौलिया के किसानों ने मन्नालाल की अध्यक्षता में एक किसान–पंच–बोर्ड की स्थापना की। विजयसिंह 'पथिक' से प्रेरणा पाकर बिजौलियां के किसानों ने युद्ध ऋण देने से इनकार कर दिया। उन्होंने जागीरदारों को किसी भी प्रकार का सहयोग देने से इनकार कर दिया और स्थिति यहां तक बिगड़ गई कि किसान पंचायत ने निर्णय ले लिया कि वे प्रत्यक्ष रूप से जागीरदारों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे और पंचायत के माध्यम से ही सब कार्य होंगे। स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि ब्रिटिश सरकार तक सतर्क हो गई और उसने यह घोषणा कर दी थी कि मेवाड़ और उसके आस–पास के पहाड़ी इलाकों में 'बोल्शविक' घुस आये हैं और वे रूसी क्रान्ति के आधार पर सशस्त्र क्रांति करना चाहते हैं। अतः ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ के महाराणा और अन्य जागीरदारों पर इस बात के लिए भारी दबाव डाला कि बिजौलिया–आन्दोलन को शीघ्रातिशीघ्र कुचल दिया जाय। गिरफ्तारी से बचने के लिए विजयसिंह 'पथिक' कोटा राज्य की सीमा में चले गए और वहीं से आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे।

जब जागीरदारों ने किसानों की समस्या को हल करने का कोई कदम नहीं उठाया तो सत्याग्रह आरम्भ किया गया। प्रत्युत्तर में जागीरदारों ने दमनकारी साधनों का सहारा लिया। हजारों किसान गिरफ्तार कर लिए गए जिनमें साधु सीतारामदास, रामनारायण चौधरी, प्रेमचन्द्र भील और माणिक्यलाल वर्मा भी शामिल थे, जागीरदारों ने समस्त जमीन को जब्ती घोषित कर दिया परन्तु किसानों ने समर्पण करने से इन्कार कर दिया। रामनारायण चौधरी जो स्थिति का अध्ययन करने बिजौलिया आ गए थे, के अनुसार बिजौलिया का प्रत्येक स्त्री, पुरूष और युवक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और प्रत्येक स्थान पर 'वन्देमातरम्' की आवाज सुनाई देती थी। बिजौलिया सत्याग्रह का समाचार समूचे भारत में फैला। यही कारण है कि महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक और

गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ। जब स्थिति पर काबू नहीं किया जा सका तो राजस्थान में एजेन्ट टू गवर्नर जनरल सर रॉबर्ट हॉलेंड और मेवाड़ के ब्रिटिश रेजीडेन्ट विलकिसन समस्या का समाधान निकालने के लिए बिजौलियां पहुंचे। मेवाड़ राज्य का प्रतिनिधित्व राज्य के दीवान प्रकाशचन्द चटर्जी और बिहारीलाल कौशिक तथा ठिकाने का प्रतिनिधित्व कामदार हीरालाल, फौजदार तेजसिंह और मास्टर जालिमसिंह के द्वारा किया गया।

विजयसिंह 'पथिक'

माणिक्यलाल वर्मा

बिजौलिया के किसानों ने इस बात पर बल दिया कि बातचीत में राजस्थान सेवा संघ के प्रतिनिधि भी शामिल किए जाएं, अतः बिजौलियां पंचायत और सेवा संघ की ओर से रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा और पंचायत सरपंच मोतीचंद ने भाग लिया। ए. जी. जी. के हस्तक्षेप के परिणाम –स्वरूप ठिकाने के जागीरदारों और बिजौलिया किसानों के मध्य समझौता सम्पन्न हुआ। समझौते के अनुसार किसानों की अनेक मांगे स्वीकार कर ली गई जिनमें बेगार–प्रथा की समाप्ति और अधिकांश 'लागबाग' का उन्मूलन सम्मिलित था तथा यह भी तय हुआ कि किसानों के विरूद्ध चलने वाले मुकदमे वापिस ले लिए जाएंगे और जिस वर्ष खेती नहीं की गई है उसका भू–राजस्व नहीं लिया जायेगा। इस प्रकार बिजौलिया–आन्दोलन समाप्त हुआ।

बेगूं आन्दोलन– बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रभावित होकर, बेगूं के किसानों ने भी लाग–बाग के विरूद्ध आन्दोलन किया। विजयसिंह पथिक, माणिक्य लाल वर्मा और राम नारायण चौधरी ने इस आन्दोलन का मार्गदर्शन किया। 1921 ई. में किसानों का कठोरता से दमन किया गया । उनके खेतों में खड़ी फसल नष्ट कर दी गयी। जंगल से घास और लकड़ी काटने, मवेशियों को चरागाहों में चरने की मनाही कर दी। दो वर्ष तक किसान साहसपूर्वक आन्दोलन करते रहे। बेगू सामन्त ठाकुर अनूपसिंह रावत ने किसानों से समझौता किया परन्तु अंग्रेजों ने इसे नहीं माना। रायला और गोविन्दपुरा गांव से आन्दोलन जारी रहा। दो किसान रूपा और किरपा शहीद हो गये। 500 से ज्यादा किसानों को बन्दी बना लिया। राजस्थान 'केसरी', 'प्रताप' और 'नवीन राजस्थान' समाचार पत्रों में पुलिस की अमानवीय कार्यवाही की निंदा की गई तो अंग्रेजों ने इन समाचार पत्रों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। महाराणा फतहसिंह को उदयपुर की गद्दी से हटाने का भी प्रयास हुआ। मेवाड़ राज्य प्रशासन पर अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट का नियन्त्रण रहा। अंग्रेज अधिकारी ट्रेंच ने किसानों पर गोलियाँ चलवा दी परन्तु किसानों ने दृढ़तापूर्वक आन्दोलन जारी रखा। अन्ततः 53 में से 34 लागतें समाप्त करने, बेगार पर रोक लगाने की घोषणा कर, किसानों से समझौता करना पड़ा। राष्ट्रीय स्तर पर और विभिन्न समाचार पत्रों में इस दमन नीति की आलोचना हुई। मेवाड़ के इन दोनों किसान आन्दोलनों–बिजौलियां और बेगूं का अन्य राज्यों पर प्रभाव पड़ा तथा किसान पंचायतों का भी महत्व बढ़ा।

मारवाड़ में कृषक आंदोलन– मरूभूमि होने के कारण यहां के भूमि बंदोबस्त पर कृषकों व प्रशासकों का अधिक ध्यान नहीं था। किन्तु कृषकों की समस्याओं के प्रति अन्य राज्यों की अपेक्षा यहां राजनीतिक चेतना अधिक जागृत थी। मारवाड़ हितकारिणी सभा के माध्यम से कृषकों की समस्याओं के प्रति सक्रिय जनमत तैयार हुआ। 1936 ई. में जब राज्य सरकार ने 119 लागों की समाप्ति की घोषणा की तो कृषकों ने इन्हें जागीरी क्षेत्रों से भी खत्म करवाने का प्रयास किया। 1939 ई. में मारवाड़ लोक परिषद ने किसानों की मांगों का समर्थन किया और किसानों को जागीरदार के विरूद्ध आंदोलन करने के लिये प्रोत्साहित किया। 1941 ई. में परिषद् ने एक समिति नियुक्त कर के लाग व बेगारों पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। किसानों का आंदोलन कमजोर करने के लिये 'मारवाड़ किसान सभा' नामक एक समानान्तर सभा जून 1941 ई. में गठित की गई। किन्तु इस प्रकार का उद्देश्य सफल नहीं हो पाया। 1941–42 ई. में जाट कृषक सुधारक सभा द्वारा राज्य सरकार से लागू करवाने व लगान कम करवाने के लिये सभायें की। रामदेवरा व नागौर मेलों जैसे सामाजिक धार्मिक उत्सवों का लाभ उठाते हुए संघर्ष करने के लिये किसानों को प्रेरित किया गया। इस आंदोलन की चर्चा संपूर्ण भारत में होने लगी। 'हरिजन' समाचार पत्र में राज्य की आलोचना छपने के बाद दिसम्बर 1943 ई. में दरबार ने जागीरों में भूमि बन्दोबस्त के आदेश दिये। इसका विरोध जागीरदारों ने किया व किसानों पर अत्याचार बढ़ा दिये। फलस्वरूप अब आन्दोलन ने जागीरदारी के ही उन्मूलन पर ध्यान केन्द्रित कर लिया। जागीरदारों ने किसान सभाओं व लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं पर क्रूर व पाश्विक अत्याचार आरम्भ किये और इसकी पराकाष्ठा डाबरा कांड के रूप में हुई, जहां 13 मार्च 1947 को पुलिस ने परिषद् कार्यकर्ताओं व किसानों के शांतिपूर्ण जुलूस पर हमला कर दिया। इस कांड की चारों ओर भर्त्सना की गई, पर राज्य सरकार ने दोषियों को दंडित करने के स्थान पर कृषकों व लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं को ही दोषी ठहराया। इस गम्भीर समस्या का समाधान भी स्वतंत्रता पश्चात् ही हो पाया। मारवाड़ में किसानों का नेतृत्व सर्व श्री जयनारायण व्यास, राधाकृष्ण तात आदि जैसे जुझारू नेताओं ने किया।

सीकर व शेखावाटी में कृषक आंदोलन– 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजस्थान के अन्य इलाकों के समान सीकर ठिकाने के किसान भी जुल्मों से त्रस्त थे। किसानों की भूमि का कोई लेखा–जोखा नहीं रखा जाता था, लगान निर्धारण का कोई उचित पैमाना नहीं था, लगान की दरें काफी ज्यादा थी। अकाल की स्थिति व फसलों के खराब होने पर भी लगान वसूली में किसान की स्थिति का ख्याल नहीं रखा जाता था। लगान के अतिरिक्त किसानों से अनेक प्रकार की लाग–बाग और बेगार भी

ली जाती थी। किसान आन्दोलन का प्रारम्भ सीकर ठिकाने के रावराजा कल्याणसिंह द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक भू–राजस्व वृद्धि करने से हुआ व 1923 ई. में वर्षा कम होने पर भी नयी दर से लगान वसूली की। राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में किसानों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई।

1931 ई. में 'राजस्थान जाट क्षेत्रीय सभा' की स्थापना के बाद किसान आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली। किसानों को धार्मिक आधार पर संगठित करने के लिए ठाकुर देशराज ने पलथाना में एक सभा कर "जाट प्रजापति महायज्ञ" करने का निश्चय किया। बसंत पंचमी 20 जनवरी 1934 को सीकर में यज्ञाचार्य पं. खेमराज शर्मा की देखरेख में यह यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद किसान यज्ञपति कुं. हुक्मसिंह को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकालना चाहते थे किन्तु रावराजा कल्याणसिंह और ठिकाने के जागीरदार इसके विरुद्ध थे। इससे लोगों में जागीरदारों के प्रति रोष उत्पन्न हुआ और माहौल तनावपूर्ण हो गया।

प्रसिद्ध किसान नेता छोटूराम ने जयपुर महाराजा को तार द्वारा सूचित किया कि एक भी किसान को कुछ हो गया तो अन्य स्थानों पर भारी नुकसान होगा और जयपुर राज्य को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। अंततः किसानों की जिद के आगे सीकर ठिकाने को झुकना पड़ा और स्वयं ठिकाने ने जुलूस के लिए सजा–सजाया हाथी प्रदान किया। सात दिन तक चलने वाले इस यज्ञ कार्यक्रम में स्थानीय लोगों सहित उत्तरप्रदेश, पंजाब, लुहारू, पटियाला और हिसार जैसे स्थानों से लगभग तीन लाख लोग उपस्थित हुए।

सीकर किसान आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सिहोट के ठाकुर मानसिंह द्वारा सोतिया का बास नामक गाँव में किसान महिलाओं के साथ किए गये दुर्व्यवहार के विरोध में 25 अप्रेल, 1934 ई. को कटराथल नामक स्थान पर श्रीमती किशोरी देवी की अध्यक्षता में एक विशाल महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। सीकर ठिकाने ने उक्त सम्मेलन को रोकने के लिए धारा–144 लगा दी। इसके बावजूद कानून तोड़कर महिलाओं का यह सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में लगभग 10,000 महिलाओं ने भाग लिया जिनमें श्रीमती दुर्गादेवी शर्मा, श्रीमती फूलांदेवी, श्रीमती रमादेवी जोशी, श्रीमती उत्तमादेवी आदि प्रमुख थी। 25 अप्रैल 1935 को जब राजस्व अधिकारियों का दल लगान वसूल करने के लिए कूदन गांव पहुँचा तो एक वृद्ध महिला धापी दादी द्वारा उत्साहित किए जाने पर किसानों ने संगठित होकर लगान देने से इंकार कर दिया। पुलिस द्वारा किसानों के विरोध का दमन करने के लिए गोलियाँ चलाई गई जिसमें चार किसान – चेतराम, टीकूराम, तुलछाराम तथा आशाराम शहीद हुए और 175 को गिरफ्तार किया गया। इस विभत्स हत्याकाण्ड के बाद सीकर किसान आन्दोलन की गूंज ब्रिटिश संसद मे भी सुनाई दी। जून 1935 में जब इस पर हाऊस ऑफ कामन्स में प्रश्न पूछा गया तो जयपुर के महाराजा पर मध्यस्थता के लिये दबाव पड़ा और जागीरदार को समझौते के लिए विवश होना पड़ा, 1935 ई. के अंत तक किसानों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले प्रमुख नेताओं में सरदार हरलालसिंह, नेतरामसिंह गौरीर, पृथ्वीसिंह गोठड़ा, पन्नेसिंह बाटड़ानाउ, हरूसिंह पलथाना, गोरूसिंह कटराथल, ईश्वरसिंह भैंरूपुरा, लेखराम कसवाली आदि शामिल थे।

शेखावाटी आंदोलन सीकर कृषक आंदोलन का ही विस्तार था। यहां के पांच ग्राम समूह (पंचपाने) बिसाऊ, डुंडलोद, मलसीसर, मंडावा व नवलगढ़ ठिकाने राज्य प्रशासन की अकर्मण्यता, व 1929–30 ई. की विश्व व्यापी आर्थिक मंदी के कारण त्रस्त थे। इनकी समस्याओं का समर्थन अखिल भारतीय जाट महासभा ने झुन्झुनूं के अपने वार्षिक सम्मेलन में किया, जिससे किसानों को नैतिक बल मिला। उचित सुनवाई न होने के कारण किसानों ने लगान न देने का फैसला किया। 1934 ई. व 1936 ई. में कुछ समझौतों की रूपरेखा तो बनी पर जागीरदारों के विरोध के कारण क्रियान्विति नहीं हो सकी। 1938 ई. में जयपुर प्रजामण्डल ने भी इस आंदोलन को नैतिक समर्थन दिया। 1942–46 ई. के मध्य जयपुर राज्य दोनों पक्षों की संतुष्टि के लिए विभिन्न समझौते लागू करने का प्रयत्न करती रही, पर इसका स्थायी समाधान 1947 के बाद निकल गया।

बून्दी किसान आन्दोलन – पं. नयनूराम, राम नारायण चौधरी और हरिभाई किंकर के नेतृत्व में बून्दी के किसानों ने भी अन्याय व लाग–बाग के विरूद्ध आन्दोलन किया। किसान परिवारों की स्त्रियों ने भी भाग लिया। बरड़गांव में किसानों की सभा पर पुलिस ने गोलियां चलायी। बरड़ के किसान भी राज्य में फैली अव्यवस्था व भ्रष्टाचार, बेगार, लागतों, युद्ध ऋण की वसूली जैसे मुद्दों पर असंतुष्ट थे। बिजौलिया किसान आंदोलन की सफलता व राजस्थान सेवा संघ से प्रोत्साहित होकर उन्होंने भी आंदोलन करने की ठानी। 1922 ई. में बून्दी के किसानों की कई बैठक हुई, जिसमें भूराजस्व के अतिरिक्त किसी अन्य कर की अदायगी न करने का फैसला किया गया। बून्दी प्रशासन की चेतावनी के बावजूद ये बैठकें चलती रहीं। 4 जून 1922 ई. में डाबी में पंचायत करने पर आंदोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

अलवर का किसान आन्दोलन (नीमूचणा काण्ड)– अलवर राज्य में भी जन जागृति का प्रारंभ किसान आन्दोलन से हुआ। जंगली सूअरों के उत्पात से दुखी होकर राज्य के किसानों ने आन्दोलन चलाया। महाराजा ने समझौता करके सूअरों को मारने का आदेश दिया। बाद में राज्य के किसानों ने लगान वृद्धि के विरोध में नीमूचणा गांव में सभा का आयोजन किया। सैनिकों ने गांव छोड़कर जाने वाले लोगों पर गोलियां चलाई जिसमें सैंकड़ों स्त्री–पुरूष, बच्चे शहीद हो गए। महात्मा गाँधी ने नीमूचणा कांड का विरोध किया। अंग्रेजी शासन पर इस कांड का दबाव पड़ा और उन्होंने अलवर के महाराजा के साथ मिलकर किसानों से समझौता किया। इसके अलावा मारवाड़, शेखावाटी, जयपुर एवं हाड़ौती के किसानों ने भी राज्य में होने वाले अत्याचारों का विरोध किया।

किसान आन्दोलन का महत्व– राजस्थान और राष्ट्रीय स्तर पर इन आन्दोलनों का महत्व रहा। किसान आन्दोलनों ने शासकों और अंग्रेजीसरकार की दमन कारी नीति को देश के सामने रखा।

राजनैतिक जन चेतना के विकास में योगदान दिया। सामन्ती व्यवस्था को समाप्त करने व प्रजातांत्रिक शासन की भावना को बल मिला। किसानों व जनता के पक्ष में राष्ट्रीय नेताओं और कांग्रेस ने भी समर्थन दिया।

जनजाति आन्दोलन व समाज सुधार

राजस्थान में दक्षिणी क्षेत्र में भील निवास करते हैं, जो मुख्यतः डूंगरपुर, मेवाड़, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ व कुशलगढ़ के इलाके हैं। भील अत्यन्त परम्परावादी जाति है जो अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को लेकर सजग रहती है। जब इनके परंपरागत अधिकारों का हनन हुआ, तो इन्होंने अपना विरोध प्रकट किया, चाहे वह फिर अंग्रेजों के विरूद्ध हो या फिर शासक के विरूद्ध हो।

भील, उनकी प्रकृति और चरित्र

भील भारत की प्राचीनतम जातियों में से एक मानी जाती है। भीलों की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित है। बाणभट्ट कृत कादम्बरी के अनुसार 'भील' शब्द का उपयोग प्राचीन संस्कृत और अपभ्रंश–साहित्य में भी मिलता है। कथासरित्सागर में 'भील' शब्द का उपयोग संभवतः सर्वप्रथम माना जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'भील' शब्द की उत्पत्ति 'भिल्ला'' शब्द से हुई है। कर्नल टाड इन्हें वन पुत्र अथवा 'जंगली शिशु' के नाम से पुकारता है। एक अन्य किवदंति के अनुसार भील महादेव से उत्पन्न हुए हैं। कुछ भी हो, राजस्थान में भीलों का विशेष योगदान रहा है। महाराणा प्रताप की सेना में अधिकांश भील थे और उन्होंने मुगल आक्रमण से रक्षा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वास्तव में यह एक बहुत ही सरल व निश्छल जाति है और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा वर्ग रहा है, परन्तु इस सब के बावजूद भील एक साहसी और वफादार जाति है। इनके मुख्य हथियार तीर कमान हैं। वे अपने रीति–रिवाज और परम्पराओं के प्रति बहुत अधिक सजग हैं और उसका उल्लंघन करना उन्हें रुचिपूर्ण नहीं लगता। यही कारण है कि जब किसी कानून के द्वारा उनके रीति–रिवाज और परम्पराओं का उल्लंघन हुआ है तो उन्होंने सदैव प्रतिकार करने का प्रयत्न किया है। उदाहरणतः 18वीं शताब्दी में उन्होंने मराठों के विरूद्ध संघर्ष किया तो 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह किया। यह अन्य बात है कि कर्नल टॉड की सफल कूटनीति के परिणामस्वरूप 12 मई, 1825 को भीलों और ब्रिटिश सरकार के मध्य एक समझौता हो गया, जिसके अनुसार भीलों की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि वे चोर, डाकू अथवा ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं को कभी शरण नहीं देंगे तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदेशों का पालन करेंगे।

गोविन्द गुरू व भगत आन्दोलन– गोविन्द गुरू एक महान समाज सुधारक थे। जिन्होंने भीलों के सामाजिक व नैतिक उत्थान का बीड़ा उठाया। उन्हें सामाजिक दृष्टि से संगठित करके उन्हें मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया। इस लक्ष्य के लिये उन्होंने 'सम्प सभा' की स्थापना की व उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में बनाये रखने के लिये भगत पंथ की स्थापना की। सम्प सभा के माध्यम से मेवाड़, डूँगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों में सामाजिक जागृति से शासन सशंकित हो उठा और भीलों को 'भगत पंथ' छोड़ने के लिए विवश किया जाने लगा।

जब उन्हें बेगार व कृषि कार्य के लिए बाध्य किया गया और जंगल में उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया, तो वे आंदोलन के लिए विवश हो गए। गोविन्द गुरू के प्रयासों से शिक्षा का प्रचार होने के साथ–साथ सुधार भी होने लगा। उदाहरण के लिये जब भीलों में मद्यपान का प्रचलन कम होने लगा, तो कुशलगढ़ व बांसवाड़ा राज्य को आबकारी क्षेत्र में भारी नुकसान उठाना पड़ा। अंग्रेजों ने इस सुधार व संगठन के पीछे 'भील राज्य' की स्थापना की संभावना व्यक्त की। अप्रैल 1913 ई. में डूँगरपुर राज्य द्वारा पहले गिरफ्तार और फिर रिहा किए जाने के बाद गोविन्द गुरू अपने साथियों के साथ ईडर राज्य में मानगढ़ की पहाड़ी पर चले गये (जो बांसवाड़ा व सथ राज्य की सीमा पर स्थित है।) अक्टूबर 1913 ई. को उन्होंने अपने संदेश द्वारा भीलों को मानगढ़ की पहाड़ी पर एकत्र होने के लिए कहा। भील भारी संख्या में हथियार लेकर एकत्र हो गये। उनके द्वारा बाँसवाड़ा राज्य के दो सिपाहियों को पीटा गया। सूथ, किले पर हमला किया गया। इस कार्यवाही ने सूथ, बांसवाड़ा, ईडर व डूंगरपुर राज्यों को चौकन्ना कर दिया। ए.जी.जी. की स्वीकृति मिलते ही 6 से 10 नवम्बर 1913 ई. के बीच मेवाड़ भील कोर की दो कम्पनियां, 104 वेलेजली राइफल्स की एक कम्पनी, राजपूत रेजीमेन्ट की एक कम्पनी व जाट रेजीमेन्ट की एक कम्पनी मानगढ़ की पहाड़ी पर पहुँच गई और गोलीबारी करके भीलों को मार दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस कार्यवाही में 1500 भील मारे गए। इस नरसंहार को कई इतिहासकारो को जलियॉवाला बाग हत्याकाण्ड से भी अधिक विभत्सकारी बताया है।

मोतीलाल तेजावत

गोविन्द गुरू

इस प्रकार भगत आंदोलन निमर्मता पूर्वक कुचल दिया गया। गोविन्दगुरू को 10 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई। यह तो स्पष्ट है कि भीलों की कोई महती राजनीति महत्वाकांक्षा नहीं थी, किन्तु उनमें व्याप्त सामाजिक एकता भी अंग्रेजों व शासकों के लिये चुनौती बन गई। गोविन्द गुरू अहिंसा के पक्षधर थे व उनकी श्वेत ध्वजा शांति का प्रतीक थी। इस आन्दोलन के परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए। भीलों के साथ–साथ समाज के दूसरे वर्गों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई।

मोतीलाल तेजावत व एक्की आंदोलन– अंग्रेजों द्वारा भगत आन्दोलन कुचल दिए जाने के बाद भीलों का आंदोलन कुछ

समय के लिये निष्क्रिय हो गया। फिर भी भगत आंदोलन का प्रभाव भीलों की राजनीतिक चेतना पर पड़ा। भीलों के विरूद्ध सरकारी नीति जारी रही। 1917 ई. में भीलों व गरासियों ने मिलकर महाराणा को पत्र लिखकर दमनकारी नीति व बेगार के प्रति अपना विरोध जताया। कोई परिणाम न निकलता देखकर 1921 में बिजौलिया किसान आंदोलन से प्रभावित होकर भीलों ने पुनः महाराणा को अत्यधिक लागतों व कामदारों के शोषणात्मक व्यवहार के विरूद्ध शिकायत दर्ज की। इन सभी अहिंसात्मक प्रयासों का जब कोई परिणाम नहीं निकला तो भोमट के खालसा क्षेत्रों के भीलों ने लागतें व बेगार चुकाने से इंकार कर दिया। 1921 ई. में भीलों को मोतीलाल तेजावत का नेतृत्व प्राप्त हुआ। तेजावत ने भीलों को लगान व बेगार न देने के लिये प्रेरित किया। एक्की आन्दोलन के नाम से विख्यात इस आंदोलन को जनजातियों के राजनीतिक जागरण का प्रतीक माना जा सकता है। डूंगरपुर के महारावल ने आंदोलन फैल जाने के भय से सभी प्रकार की बेगारें अपने राज्य से समाप्त कर दी। जागीरी क्षेत्रों में भीलों को यह सुविधा न मिल पाने के कारण एक्की आंदोलन संगठित रूप से तेजावत के नेतृत्व में भोमट क्षेत्र के अतिरिक्त सिरोही व गुजरात क्षेत्र में भी फैल गया। अग्रेंजी सरकार ने अब दमनात्मक नीति अपनाई। 7 अप्रैल 1922 ई. को ईडर क्षेत्र में माल नामक स्थान पर मेजर सटन के अधीन मेवाड़ भील कोर ने गोलीबारी की। 3 जून 1929 ई. को ईडर राज्य ने तेजावत को गिरफ्तार कर मेवाड़ सरकार को सौंप दिया। मेवाड़ के सर्वोच्च न्यायालय महाइन्द्राज सभा ने लिखित में तेजावत से राज्य के विरूद्ध कार्य न करने का आश्वासन मांगा। गाँधीजी के निकट

सहयोगी श्री मणिलाल कोठारी के हस्तक्षेप से एक समझौता हुआ। 16 अप्रैल 1963 ई. को तेजावत ने लिखित में इच्छित आश्वासन दिया और 23 अप्रैल को वह रिहा कर दिए गए।

मीणा आन्दोलन– 1924 ई. में अंग्रेजी सरकार ने मीणाओं को ज्यराम पेशा कोम' (जन्मजात अपराधी जाति) घोषित कर दिया। मीणा स्त्री–पुरूषों को प्रतिदिन पुलिस थाने पर जाकर हाजरी देनी पड़ती थी। आय के साधनों के अभाव में आर्थिक स्थिति खराब थी। छोटूलाल, महादेव, जवाहर राम आदि ने 'मीणा जाति सभा' की स्थापना की तथा इस अपमानजनक कानून का विरोध किया गया। शिक्षा के लिए प्रचार–प्रसार किया। सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध आवाज उठायी। 'मीणा सुधार समिति' गठित की गई। श्रीमाधोपुर (सीकर जिला) में आन्दोलन हुआ। ठक्कर बापा के प्रयासों से जयपुर राज्य ने इस कानून को समाप्त कर दिया।

इसके परिणाम स्वरूप थानों में अनिवार्य उपस्थिति की बाध्यताओं को समाप्त किया गया किन्तु जरायम पेशा अधिनियम पूर्ववत् बना रहा। 28 अक्टूबर 1946 ई. को बागावास में हुए विशाल सम्मेलन में 26000 मीणाओं ने भाग लिया ।इसमें चौकीदार मीणाओं ने स्वेच्छा से अपने कार्य से इस्तीफा दिया, और इस दिन को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया। जरायम पेशा अधिनियम 1952 ई. में ही रद्द हो पाया।

प्रजामण्डल के नेतृत्व में सम्पूर्ण आजादी

जिस समय अखिल भारतीय स्तर पर राजनीतिक चेतना फल रही थी, राजस्थान भी इससे अछूता नही रहा। यहां विभिन्न संस्थायें जैसे राजस्थान सेवा संघ व राजस्थान मध्य भारत सभा देशी रियासतों में राजनीतिक चेतना जागृत करने में सफल रही। यही नहीं ब्रिटिश प्रान्त के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं से भी राजस्थान के स्वतंत्रता प्रेमी निरन्तर सम्पर्क में रहे।

राजस्थान में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। 1927 ई. से पूर्व अखिल भारतीय स्तर पर हो रही राजनीतिक हलचल से राजस्थान प्रभावित था। प्रथम विश्व युद्ध से लौटे सैनिकों का विवरण, रोलेट एक्ट, 1920 का असहयोग आन्दोलन जैसी घटनाओं ने निश्चित रूप चेतना जागृत की। यद्यपि सभी रियासतों की स्थितियाँ व समस्यायें समान ही थी, फिर भी एकीकृत संगठन के अभाव में कोई व्यवस्थित आन्दोलन का श्रीगणेश नहीं हो पाया। कांग्रेस पार्टीने भी देशी राज्यों के मामलों में अहस्तक्षेप की नीति घोषित कर यहां की राष्ट्रवादी गतिविधियाँ खादी का प्रयोग प्रचार एवं सामाजिक सुधारों तक ही सीमित कर दी।

1927 ई. में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की स्थापना के साथ ही सक्रिय राजनीति का काल आरंभ हुआ। कांग्रेस का समर्थन मिल जाने के बाद इसकी शाखाएँ स्थापित की जाने लगी। 1931 ई. में रामनारायण चौधरी ने अजमेर में देशी राज्य लोक परिषद् का प्रथम प्रान्तीय अधिवेशन आयोजित किया।

1938 ई. में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर देशी रियासतों के लोगों द्वारा संचालित स्वतंत्रता संघर्ष को समर्थन किया। काँग्रेस के इस प्रस्ताव से देशी रियासतों में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम को नैतिक समर्थन मिला। इन राज्यों में चल रहे आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस से जुड़ गये और राजनीतिक चेतना का विस्तार हुआ। प्रजामंडलों की स्थापना हुई, जिसने देशी शासकों के अधीन उत्तरदायी प्रशासन की मांग की।

विभिन्न देशी रियासतों में प्रजामंडल आन्दोलन की भूमिका

जोधपुर– जोधपुर में राजनीतिक गतिविधियां 1918 ई. में ही आरंभ हो गई थी जब चांदमल सुराणा ने 'मारवाड़ हितकारिणी सभा' की स्थापना की। 1920 ई. में जय नारायण व्यास ने मारवाड़ सेवा संघ स्थापित किया। 1923 ई. में मारवाड़ हितकारिणी सभा

को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। अक्टूबर 1929 ई. में व्यासजी ने मारवाड़ राज्य लोक परिषद् की स्थापना की। उपरोक्त गतिविधियों से स्पष्ट होता है कि जोधपुर में राजनीतिक चेतना का व्यापक प्रसार अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक था। 1934 ई. में जोधपुर में प्रजामंडल की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष भंवरलाल सर्राफ थे। इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन स्थापित करना व नागरिकों की रक्षा करना था। 1936 ई. में इस संस्था को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की जोधपुर इकाई ''मारवाड़ राज्य लोक परिषद्'' सक्रिय रूप से जोधपुर में राजनीतिक गतिविधियाँ संचालित करती रही। विशेष कर जोधपुर प्रजामंडल को असंवैधानिक घोषित किये जाने के बाद से लोक परिषद् ने संवैधानिक अधिकारों व उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष जारी रखा।

चुनावों को साम्प्रदायिक आधार के स्थान पर क्षेत्रीय आधार पर करवाने के मांग परिषद् ने की। मार्च 1940 ई. में परिषद् को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिये जाने के बाद, सदस्यों ने शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर ध्यान केन्द्रित किया। इसके नेता जैसे रणछोड़दास गहानी, मथुरादास माथुर, कन्हैयालाल, इन्द्रमल जैन, आनंदराज सुराणा, भंवरलाल सर्राफ आदि ने अपना सारा ध्यान परिषद् की विचाराधारा लोकप्रिय बनाने में लगाया। उधर सरकार ने राजनीतिक अधिकारों की मांग को परिषद् व सामंतों के बीच संघर्ष का रूप देने का प्रयास किया। 1942 ई. में लोक परिषद ने अत्याचारों के विरूद्ध व राज्य में उत्तरदायी शासन के लिये आंदोलन आरंभ किया। व्यास जी ने परिषद का विधान स्थगित करके स्वयं को प्रथम डिक्टेटर नियुक्त किया और जोधपुर में भारत छोड़ो आंदोलन संचालित किया। प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारियाँ व भूख हड़ताल हुई जिसमें बाल मुकुन्द बिस्सा की मृत्यु हो गई। 4 नवम्बर 1947 ई. को परिषद् ने विधानसभा विरोध दिवस मनाया। 1948 ई. में विलय पत्र पर हस्ताक्षर के बाद ही उत्तरदायी सरकार का गठन हो पाया।

बीकानेर– बीकानेर क्षेत्र के प्रारंभिक नेता कन्हैयालाल ढूँढ व स्वामी गोपालदास थे। इन्होंने चुरू में सर्वहितकारिणी सभा स्थापित की। जनता को अधिकारों के प्रति जागृत करने के लिए उसने पुत्री पाठशाला खोली। महाराजा इस रचनात्मक कार्य के प्रति भी आशंकित हो उठे और षड़यंत्र बता कर उन्हें प्रतिबंधित कर दिया। अप्रैल 1932 ई. में जब लंदन में महाराजा गोल मेज सम्मेलन में भाग लेने गये तो ''बीकानेर एक दिग्दर्शन'' नामक पम्पलेट बांटे गये। जिसमें बीकानेर की वास्तविक दमनकारी नीतियों का खुलासा किया गया। लौटकर महाराजा ने सार्वजनिक सुरक्षा कानून लागू किया। स्वामी गोपालदास चंदनमल बहड़, सत्यनारायण सर्राफ, खूबचंद सर्राफ आदि को बीकानेर षड़यंत्र केस के नाम पर गिरफ्तार कर लिया गया। इस काले कानून का विरोध जारी रहा। 4 अक्टूबर 1936 ई. को प्रमुख नेता शीघ्र ही निर्वासित कर दिए गए। जिनमें वकील मुक्ताप्रसाद, मघाराम वैध व लक्ष्मीदास शामिल थे। रघुबरदयाल ने 22 जुलाई 1942 ई. को बीकानेर प्रजा परिषद् की स्थापना की, जिसका उद्देश्य महाराजा के नेतृत्व में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। 1943 ई. में गंगासिंह जी की मृत्यु के बाद शार्दुल सिंह गद्दी पर बैठे वे भी दमन में विश्वास रखते थे। 26 अक्टूबर 1944 ई. में 'बीकानेर दमन विरोधी दिवस' मनाया गया, जो राज्य में प्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन था। दुधवाखारा के किसानों ने जागीरदारों के दमन के विरोध में प्रजा परिषद् के सहयोग से आंदोलन शुरू किया। मार्च 1940 ई. में प्रेस अधिनियम पारित हुआ जिसमें प्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसी ब

राज्य में संवैधानिक सुधारों की घोषणा की। एच.जे. मंगलानी के अनुसार ''झालावाड़ नरेश द्वारा अपने राज्य में सुधारों की घोषणा करना प्रजातंत्रीय व्यवस्था की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास था।''

जयपुर– अर्जुनलाल सेठी द्वारा राजनीतिक आन्दोलन का आरंभ जयपुर में बाद में सेठ जमनालाल बजाज द्वारा रचनात्मक कार्यों में परिवर्तित हो गया। बजाज द्वारा 1927 ई. में चरखा संघ की स्थापना हुई, 1931 ई. में कपूरचन्द पाटनी ने जयपुर राज्य प्रजा मंडल की स्थापना की जो राजनीतिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली नहीं रहा। कांग्रेस के हरिपुरा प्रस्ताव के बाद जमनालाल बजाज की प्रेरणा व हीरालाल शास्त्री के सक्रिय सहयोग से जयपुर राज्य प्रजा मंडल का पुनर्गठन हुआ। इसका पहला अधिवेशन 9 मई 1933 ई. को बजाज जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। प्रजामंडल का मूल उद्देश्य उत्तरदायित्व शासन की स्थापना करना था। प्रजामंडल को हतोत्साहित करने के लिये जयपुर सरकार ने कानून बनाकर किसी भी अपंजीकृत संस्था का सदस्य बनने पर रोक लगा दी। चूंकि श्री बजाज जयपुर राज्य की सीमा में नहीं रहते थे इसलिये संस्था का पंजीकरण नहीं हो पाया। राज्य द्वारा लगाये प्रतिबंध को तोड़ कर जयपुर में प्रवेश करने पर बजाज को बैराठ के निकट बंदी बना लिया गया। उन्हीं के साथ अन्य नेता जैसे हीरालाल शास्त्री, चिरंजीलाल अग्रवाल व कपूरचंद पाटनी भी बंदी बनाये गये। अब जयपुर में सत्याग्रह का संचालन गुलाबचन्द कासलीवाल व दौलतमल भंडारी के नेतृत्व में शुरू हुआ। अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रश्न को गाँधीजी ने उठाया व जयपुर के महाराजा को समझौते के लिये चेतावनी दी। एक औपचारिक बातचीत के बाद 7 अगस्त 1939 ई. को समझौता हुआ जिसके तहत प्रजामंडल को मान्यता मिली व मार्च 1940 ई. में इसका विधिवत् पंजीकरण हुआ।

हीरालाल शास्त्री इसके पहले अध्यक्ष बने। 16 सितम्बर 1942 ई. को शास्त्री जी ने जयपुर के प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल को पत्र लिखकर कुछ शर्तें रखी जिनकी पालना न करने पर आन्दोलन की चेतावनी दी। इनमें युद्ध के लिये जन–धन की सहायता न देना व उत्तरदायी शासन के लिये शीघ्र कार्यवाही करना था। इसी बीच 1942 ई. का आन्दोलन संचालित करने के विषय में विवाद उत्पन्न हुआ व बाबा हरिशचन्द्र के नेतृत्व में आजाद मोर्चा प्रजामंडल से पृथक हो गया जो 1945 ई. में नेहरू जी के प्रयासों से पुनः प्रजामंडल में मिल गया। इससे आन्दोलन में गति थोड़ी धीमी पड़ी। अक्टूबर 1942 ई. में संवैधानिक सुधारों के लिये एक समिति सरकार ने नियुक्त की जिसने 1943 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मार्च 1947 ई. में नया मंत्रिमंडल बना किन्तु उत्तरदायी सरकार की स्थापना 30 मार्च 1949 ई. को ही हो सकी।

अलवर– अलवर में स्वाधीनता संग्राम के अग्रदूत पं. हरिनारायण शर्मा थे जिन्होंने अस्पृश्यता निवारण संघ, वाल्मीकि संघ व आदिवासी संघ की स्थापना की। 1938 ई. अलवर प्रजामंडल की स्थापना हुई जिसने महाराजा के नेतृत्व में उत्तरदायी शासन की मांग की। जब इस संस्था का पंजीकरण नहीं हुआ तो संघर्ष आरंभ हुआ। अप्रैल 1940 ई. में अलवर में निर्वाचित नगर पालिका परिषद् का गठन हुआ। अगस्त 1940 ई. में यद्यपि पंजीकरण हो गया किन्तु संस्था अथवा सदस्यों को ध्वज उपयोग करने की अनुमति नहीं थी। 1940 ई. में युद्ध कोष के लिये चंदा वसूली का विरोध कार्यकर्ताओं ने किया। इस पर हरिनारायण शर्मा व भोलानाथ मास्टर को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। जनवरी 1944 ई. में भवानीशंकर शर्मा की अध्यक्षता में प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन हुआ। उत्तरदायी सरकार के गठन की मांग को लेकर प्रजामंडल निरंतर प्रयासरत रहा। 1946 ई. में प्रजामंडल ने किसानों की मांगों का समर्थन करके उन्हें भू–स्वामित्व देने के प्रस्ताव का समर्थन किया। 30 अक्टूबर 1946 ई. में महाराजा ने संवैधानिक सुधारों के लिये समिति नियुक्त की जिसका आन्दोलन कारियों ने बहिष्कार किया। उत्तरदायी शासन की मांग अलवर के शासक ने दिसम्बर 1947 ई. स्वीकार कर ली। मार्च 1948 ई. में मत्स्य संघ में अलवर के विलय के साथ ही राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गई।

भरतपुर– भरतपुर में स्वतंत्रता आन्दोलन का श्रीगणेश जगन्नाथ दास अधिकारी व गंगा प्रसाद शास्त्री ने किया। 1912 ई. में हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना हुई। सौभाग्य से भरतपुर के महाराजा किशनसिंह अधिक प्रगतिशील शासक थे। उन्होंने हिन्दी को प्रोत्साहित किया व उत्तरदायी शासन की माँग को स्वीकार किया व 15 सितम्बर 1927 ई. को ऐसी घोषणा भी की। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा की इन गतिविधियों को गम्भीरता से लेते हुए उन्हें गद्दी छोड़ने पर विवश किया। उनके स्थान पर अल्प वयस्क बृजेन्द्र सिंह गद्दी पर बैठे। प्रशासन के लिए एक अंग्रेज अधिकारी की नियुक्ति की गई, जिसने जगन्नाथ दास अधिकारी को निर्वासित कर दिया व सार्वजनिक सभाओं व प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया। हरिपुरा कांग्रेस के पश्चात् भरतपुर के नेताओं ने रेवाड़ी (हरियाणा) में दिसम्बर 1938 ई. को प्रजा मंडल ने सत्याग्रह का आह्वान किया। दिसम्बर 1940 ई. में प्रजामंडल से समझौता किया जिसके तहत प्रजा परिषद् नाम से संस्था का पंजीकरण किया गया व सभी नेता रिहा किए गए। प्रजा परिषद् का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक समस्याओं को प्रस्तुत करना, प्रशासनिक सुधारों पर बल देना व शिक्षा का प्रसार करना। परिषद् ने 27 अगस्त से 2 सितम्बर 1940 ई. तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया। परिषद् ने भारत छोड़ों आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। सरकार ने परिषद् की संतुष्टि के लिये बृज जय प्रतिनिधि सभा का गठन किन्तु राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकी। प्रतिनिधि सभा का बहिष्कार किया गया। 1945 ई. में सत्याग्रह की घोषणा की गई किन्तु प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के कारण वह सफल नहीं हो पाया। अपने दिसम्बर 1946 ई. के कामां सम्मेलनों में बेगार समाप्त करने व उत्तरदायी शासन की माँग रखी गई। दुर्भाग्यवश राज्य के उपद्रव सांप्रदायिक झगड़ों में बदल गए। 18 मार्च 1947 ई. को भरतपुर के मत्स्य संघ में विलीन होने के बाद ही समस्याएँ समाप्त हो पाई।

धौलपुर– आर्य समाज के प्रमुख स्वामी श्रद्धानंद ने 1918 ई. से ही धौलपुर के निरंकुश शासन व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठानी

आरंभ की। स्वामी जी की मृत्यु के बाद आन्दोलन शिथिल हो गया। 1936 ई. में धौलपुर राज्य प्रजा मंडल की स्थापना कृष्ण दत्त पालीवाल ने की। यहाँ भी प्रजा मंडल उत्तरदायित्व शासन व्यवस्था व नागरिक अधिकारों की माँग को लेकर आन्दोलनरत रहा।12 नवम्बर 1946 ई. में तासिनो गाँव में अधिवेशन में पुलिस द्वारा गोलीबारी की। जनता के दबाव में आकर तासिनो कांड की जांच के आदेश दिये। 4 मार्च 1948 ई. में उत्तरदायी शासन स्थापित करना स्वीकार किया। शीघ्र ही धौलपुर मत्स्य संघ में विलीन हो गया।

अन्य राज्य – अन्य राज्यों में भी प्रजामंडल अथवा प्रजा परिषद् के नाम से स्वाधीनता आन्दोलन चलता रहा। 1938 ई. में करौली में प्रजामंडल स्थापित हुआ। उत्तरदायी शासन व नागरिक अधिकारों को लेकर त्रिलोक चंद माथुर, चिरंजीलाल शर्मा आदि ने संघर्ष जारी रखा। बांसवाड़ा में 1943 ई. में भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी ने प्रजामंडल की स्थापना की। डूंगरपुर में भोगीलाल पांड्या ने 1944 में सेवा संघ स्थापित किया। डूंगरपुर प्रजामंडल की स्थापना हरिदेव जोशी ने 1944 ई. में की। प्रतापगढ़ में ठक्कर बापा की प्रेरणा से अमृतलाल, चुन्नीलाल प्रभाकर ने प्रजामंडल की स्थापना 1936 ई. में की। सिरोही में 1939 ई. में गोकुल भाई भट्ट ने प्रजामंडल की बागडोर संभाली किन्तु यह अधिक सक्रिय नहीं हो पाया। झालावाड़ में 1947 ई. में पहली सार्वजनिक सभा हुई। किशनगढ़ प्रजामंडल की स्थापना 1939 ई. में हुई।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान में जन संस्थाएँ अपनी शैशवावस्था में गांधीवादी व रचनात्मक कार्यों में ही व्यस्त रही। रियासतों के शासकों का रवैया इतना दमनकारी था कि खादी प्रचार व स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं को भी अनेक रियासतों में प्रतिबंधित कर दिया गया। प्रेस व किताब पर प्रतिबंध आम बात थी। सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध होने के कारण जन चेतना का व्यापक प्रसार नहीं हो पाया। ऐसी कठिन परिस्थितियों में लोक संस्थाओं का अस्तित्व व कार्यप्रणाली ही कठिन था। जब तक कांग्रेस ने अपने हरिपुरा अधिवेशन (1938) में देशी रियासतों में चल रहे आन्दोलनों को समर्थन नहीं दिया, तब तक यहां पर आन्दोलन सीमित व शिथिल रहा।

हरिपुरा अधिवेशन के बाद रियासती आन्दोलन राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ गए। राष्ट्रवादी के नेताओं ने आन्दोलनों को नैतिक समर्थन दिया। फिर भी ये आन्दोलन उत्तरदायी शासन की मांग के आधार पर संचालित होते रहे। जब स्वतंत्रता मिली तो ये प्रजामंडल रियासतों के भारत में विलय के लिए प्रयासरत हो गए।

राजस्थान का एकीकरण–1947 से 1956 तक

15 अगस्त 1947 ई. को भारत स्वाधीन हुआ। परन्तु भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 की आठवीं धारा के अनुसार ब्रिटिश सरकार की भारतीय देशी रियासतों पर स्थापित सर्वोच्चता पुनः देशी रियासतों को हस्तांतरित कर दी गयी। इसका तात्पर्य था कि देशी रियासतें स्वयँ इस बात का निर्णय करेंगी कि वह किसी अधिराज्य में (भारत अथवा पाकिस्तान में) अपना अस्तित्व रखेंगी। यदि कोई रियासत किसी अधिराज्य में शामिल न हो तो वह स्वतंत्र राज्य के रूप में भी अपना अस्तित्व रख सकती थी। यदि ऐसा होने दिया जाता है तो भारत अनेक छोटे–छोटे खंडो में विभक्त हो जाता एवं भारत की एकता समाप्त हो जाती। तत्कालीन भारत सरकार का राजनैतिक विभाग जो अब तक देशी रियासतों पर नियंत्रण रखता था, समाप्त कर दिया गया और 5 जुलाई 1947 को सरदार बल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में रियासत सचिवालय गठित किया गया। रियासत सचिवालय सभी छोटी बड़ी रियासतों का विलीनीकरण या समूहीकरण चाहता था। इन रियासतों का समूहीकरण इस प्रकार किया जाना था कि भाषा, संस्कृति और भौगोलिक सीमा की दृष्टि से एक संयुक्त राज्य संगठित हो सके।

राजस्थान के गठन के प्रारम्भिक प्रयास

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राजस्थान में 22 छोटी बड़ी रियासतें थी। इसके अलावा अजमेर–मेरवाड़ा का छोटा सा क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत था। इन सभी रियासतों तथा ब्रिटिश शासित क्षेत्र को मिलाकर एक इकाई के रूप में संगठित करने की अत्यन्त विकट समस्या थी। सितम्बर 1946 ई. को अखिल भारतीय देशी राज्य लोक–परिषद ने निर्णय लिया था कि समस्त राजस्थान को एक इकाई के रूप में भारतीय संघ में शामिल होना चाहिए। इधर भारत सरकार के रियासत सचिवालय ने निर्णय लिया कि स्वतंत्र भारत में वे ही रियासतें अपना पृथक अस्तित्व रख सकेंगी जिनकी आय एक करोड़ रुपये वार्षिक एवं जनसंख्या दस लाख या उससे अधिक हो। इस मापदण्ड के अनुसार राजस्थान में केवल जोधपुर, जयपुर, उदयपुर एवं बीकानेर ही इस शर्त को पूरा करते थे। राजस्थान की छोटी रियासतें यह तो अनुभव कर रही थी कि स्वतंत्र भारत में आपस में मिलकर स्वावलम्बी इकाइयाँ बनाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, परन्तु ऐतिहासिक तथा कुछ अन्य कारणों से शासकों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास एवं ईर्ष्या भरी हुई थी।

राजस्थान की प्रमुख रियासतों की समस्याएँ

(1) स्वतंत्रता एवं विभाजन के पश्चात् हुए सांप्रदायिक झगड़े मुख्य कारण थे। अलवर व भरतपुर में मेव जाति की समस्या पुनः उभर कर आई। गाँधी जी की हत्या में अलवर राज्य का नाम आने से भी अलवर विवादित था।

(2) जोधपुर की भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थी। पाकिस्तान की तरफ से जोधपुर को अपनी तरफ मिलाने की चर्चा भी गरम थी।

(3) मेवाड़ के महाराणा एवं जागीरदार वर्ग अपनी गौरवपूर्ण ऐतिहासिक स्थिति के कारण संघ में विलय के इच्छुक नहीं थे।

(4) उधर बीकानेर भी सीमांत राज्य होने के कारण भारत के लिए अत्यन्त महत्तवपूर्ण प्रदेश था। यद्यपि भारत की संविधान निर्मात्री सभा में बीकानेर का प्रतिनिधित्व था, फिर भी शासक का मन स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने का ही था।

बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति में मेवाड़ महाराणा द्वारा 25 जून 1946 ई. को जयपुर में राजस्थानी राजाओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसका उद्देश्य एक संघ बनाना

था। किन्तु समस्त शासक एक मत न हो सके इसलिए महाराणा की योजना फलीभूत न हो सकी। इसी प्रकार डूँगरपुर के शासक ने भी बागड़ राज्य (डूँगरपुर, बांसवाड़ा व प्रतापगढ़) बनाने का असफल प्रयास किया। जयपुर व कोटा के शासकों के प्रयास भी असफल रहे।

फलस्वरूप भारत सरकार के रियासत विभाग द्वारा सभी रियासतों को मिलाकर एकीकृत राजस्थान का गठन करने का निश्चय किया गया। इस कार्य के लिए अत्यन्त बुद्धिमानी, दूरदर्शिता, संयम एवं कूटनीति की आवश्यकता थी और इसलिए यह कार्य बड़ी सावधानी से धीरे–धीरे सम्पन्न किया गया। एकीकृत राजस्थान का गठन निम्न पाँच चरणों में पूरा हुआ :

(1) प्रथम चरण में "मत्स्य संघ" का निर्माण किया गया। इस संघ में अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली को शामिल किया गया।

(2) द्वितीय चरण में "संयुक्त राजस्थान" का निर्माण किया गया जिसमें कोटा, बूँदी, झालावाड़, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ और शाहपुरा शामिल किए गये।

(3) तृतीय चरण में मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में शामिल किया गया।

(4) चतुर्थ चरण में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर राज्यों को संयुक्त राजस्थान में शामिल कर "वृहत राजस्थान" का निर्माण किया गया।

(5) पंचम चरण में "मत्स्य संघ" को "वृहत राजस्थान" में शामिल किया गया।

उपर्युक्त पाँच चरणों में सिरोही व अजमेर–मेरवाड़ा एकीकृत राजस्थान में शामिल नहीं हो पाये। इनका राजस्थान में विलय 1956 में ही संभव हो सका।

मत्स्य संघ

मानचित्र – मत्स्य संघ

भौगोलिक जातीय, आर्थिक दृष्टिकोण से अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली एक से थे। चारों राज्यों के शासको को 27 फरवरी 1948 को दिल्ली बुलाकर उनके समक्ष संघ का प्रस्ताव रखा गया, जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। श्री के. एम. मुंशी के सुझाव पर इस संघ का नाम मत्स्य संघ रखा गया जैसा कि महाभारत काल में इस क्षेत्र का नाम था। 28 फरवरी 1948 को दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गये। 18 मार्च 1948 को इस संघ का उद्‌घाटन केन्द्रीय मंत्री एन.वी. गाडगिल ने किया। संघ की जनसंख्या 18 लाख व वार्षिक आय 2 करोड़ रूपये थी। धौलपुर के महाराज उदयभान सिं

की प्रार्थना की ताकि उदयपुर के महाराज राजप्रमुख बन जायेंगे, जिससे बूँदी महाराज की कठिनाइयों का स्वतः निराकरण हो जायेगा। किन्तु महाराणा ने बूँदी महाराज को भी वही उत्तर दिया जो उन्होंने कुछ दिनों पहले रियासत विभाग को दिया था। अन्त में विवश होकर बूँदी महाराव ने कोटा महाराज का संयुक्त राजस्थान के राजप्रमुख बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बूँदी महाराव का सम्मान बनाए रखने के लिए भारत सरकार ने बूँदी महाराव को उप–राजप्रमुख तथा डूँगरपुर के महाराव को उप–राजप्रमुख बनाने का निर्णय किया। इन नौ राज्यों का एक संक्षिप्त संविधान तैयार किया गया और इसका उद्घाटन 25 मार्च 1948 को होना तय हुआ।

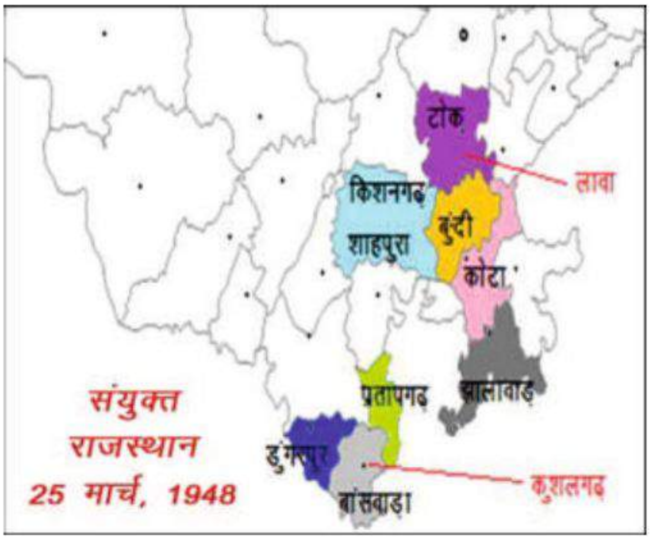

इधर मेवाड़ के संयुक्त राजस्थान में शामिल न होने के फैसले का मेवाड़ में तीव्र विरोध हुआ। मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रमुख नेता एवं संविधान निर्मात्री समिति के सदस्य श्री माणिक्य लाल वर्मा ने कहा कि – मेवाड़ की 20 लाख जनता के भाग्य का फैसला अकेले महाराणा साहब और उसके प्रधान सर राममूर्ति नहीं कर सकते। प्रजा मण्डल की यह स्पष्ट नीति है कि मेवाड़ अपना अस्तित्व समाप्त कर राजपूताना प्रान्त का एक अंग बन जाये। किन्तु महाराणा अपने निश्चय पर अटल रहे। शीघ्र ही मेवाड़ की राजनैतिक परिस्थितियाँ पलटी। मेवाड़ में मंत्रिमण्डल के गठन को लेकर प्रजामण्डल एवं मेवाड़ सरकार के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गया। अतः राज्य में उत्पन्न राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने के लिए महाराणा ने 23 मार्च 1948 को मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में शामिल करने के अपने इरादे की सूचना भारत सरकार को भेजते हुए संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन की तारीख 25 मार्च को आगे बढ़ाने का आग्रह ि

भी यह क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ था, जिसका विकास करना इन राज्यों के आर्थिक सामर्थ्य के बाहर था। समाजवादी दल के नेता डॉ. जयप्रकाश नारायण ने 9 न

मानचित्र – राजस्थान 26.01.1950

बीच सिरोही के प्रश्न को लेकर राजस्थान की जनता में काफी उत्तेजना फैल चुकी थी। 18 अप्रेल 1948 को संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के कार्यकर्त्ताओं का एक शिष्टमंडल पं. नेहरू से मिला और उन्हें सिरोही के सम्बन्ध में प्रदेश की जन भावनाओं से अवगत कराया। पं. नेहरू की सरदार पटेल से वार्ता के पश्चात् अत्यन्त चतुराई से जनवरी 1950 में माउण्ट आबू सहित सिरोही का 304 वर्ग मील क्षेत्र के 89 गाँव गुजरात में व शेष सिरोही राजस्थान में मिला दिया गया। इस प्रकार सिरोही के प्रमुख आकर्षण देलवाड़ा एवं माउण्ट आबू तो गुजरात में मिल गए और गोकुल भाई भट्ट के जन्म स्थान हाथल सहित सिरोही का शेष भाग राजस्थान को दे दिया गया। इस कदम का राजस्थान में तीव्र विरोध हुआ जिसका नेतृत्व मुख्यतः गोकुल भाई भट्ट ने किया। राजस्थान के नेतृत्व ने पं. नेहरू से इस समस्या के समाधान के लिए दबाव बनाया। अंततः इसके निपटारे के लिए इस प्रकरण को राज्य पुनर्गठन आयोग को सौंप दिया गया।

अजमेर मेरवाड़ा का विलय

ब्रिटिश काल में अजमेर–मेरवाड़ा एक केन्द्रशासित

एकीकरण के विभिन्न चरण

क्र.सं.	नाम	राज्य	राजप्रमुख	प्रधानमंत्री / मुख्यमंत्री	तिथि / वर्ष
प्रथम	मत्स्य संघ	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली	धौलपुर के शासक उदयभान सिंह	श्री शोभाराम	19 मार्च 1948
द्वितीय	संयुक्त राजस्थान संघ	कोटा, बूँदी, झालावाड़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, किशनगढ़, टोंक	कोटा नरेश भीम सिंह	श्री गोकुल लाल असावा	25 मार्च 1948
तृतीय	संयुक्त राजस्थान (मेवाड़ का विलय)	द्वितीय चरण के राज्यों के साथ मेवाड़	उदयपुर (मेवाड़) महाराणा भूपाल सिंह	श्री माणिक्य लाल वर्मा	18 अप्रेल 1948
चतुर्थ	वृहत् राजस्थान	तृतीय चरण के राज्यों के साथ जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर व लावा(ठिकाना)	उदयपुर महाराणा भूपाल सिंह महाराज प्रमुख, जयपुर नरेश राजप्रमुख	श्री हीरालाल शास्त्री	30 मार्च 1949
पंचम	वृहत् राजस्थान	प्रथम व चतुर्थ चरण के राज्य (नीमराणा– ठिकाना सहित)	उदयपुर महाराणा भूपाल सिंह महाराज प्रमुख जयपुर नरेश राजप्रमुख		15 मई 1949
षष्ठम	वृहत् राजस्थान	पंचम चरण के साथ सिरोही (आबू व देलवाड़ा को छोड़कर)	राज्यपाल गुरूमुख निहाल सिंह		26 जनवरी 1950
सप्तम	राजस्थान	षष्ठम चरण के साथ अजमेर, मा. आबू, देलवाडा व सुनेल टप्पा			1 नवम्बर 1956

प्रदेश रहा था। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना प्रान्तीय सभा सदैव यह माँग करती रही कि वृहत राजस्थान में न केवल प्रान्त की सभी रियासतें वरन् अजमेर मेरवाड़ा का इलाका भी शामिल किया जाए किन्तु दूसरी ओर अजमेर का कांग्रेस नेतृत्व इस माँग का विरोध कर रहा था। 1952 ई. के आम–चुनावों के बाद अजमेर–मेरवाड़ा में श्री हरीभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में कांग्रेस का मंत्रिमंडल बना। चूंकि कांग्रेस का यह नेतृत्व अजमेर को राजस्थान में मिलाये जाने के कभी पक्ष में नहीं रहा और अब अजमेर–मेरवाड़ा में मंत्रिमण्डल के गठन के बाद तो कांग्रेस का नेतृत्व यह तर्क देने लगा कि प्रशासन की दृष्टि से छोटे राज्य ही बनाये रखना चाहिए। इस प्रकरण को भी राज्य पुनर्गठन आयोग को सौंप दिया गया। राज्य पुनर्गठन आयोग ने अजमेर के कांग्रेस नेताओं के तर्क को स्वीकार नहीं किया एवं सिफारिश की कि अजमेर–मेरवाड़ा का क्षेत्र राजस्थान में मिला देना चाहिए। तदनुसार 1 नवम्बर 1956 ई. को राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा सिरोही के माउण्ट आबू वाले क्षेत्र के साथ–साथ अजमेर–मेरवाड़ा को भी राजस्थान में मिला दिया गया।

इस प्रकार राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया जो मार्च 1948 में आरम्भ हुई थी उसकी पूर्णाहुति 1 नवम्बर 1956 को हुई। एकीकृत राजस्थान के निर्माण के बाद भी राजतंत्र के अंतिम अवशेष के रूप में राजप्रमुख के नवसृजित पद रह गए थे। भारत की नवनिर्वाचित संसद ने संविधान के 7वें संशोधन द्वारा 1 नवम्बर 1956 ई. को राजप्रमुख के पद समाप्त कर दिए एवं राज्य के प्रथम राज्यपाल के रूप में सरदार गुरूमुख निहाल सिंह को शपथ दिलाई गई। इस प्रकार सरदार पटेल की चतुराई, बुद्धिमत्ता एवं कुशल नीति से, राजस्थानी शासकों की अनिच्छाओं पर जनमत के प्रभावशाली दवाब से राजस्थान के एकीकरण का स्वप्न साकार हो गया।

अध्ययन बिन्दु

- राजस्थान का किसान दोहरी गुलामी से लड रहा था एक अंग्रेज दूसरे देशी ठिकानेदार।
- 1857 की क्रांति का राजस्थान में आगाज नसीराबाद छावनी से हुआ था।
- केसरीसिंह बारहठ, प्रतापसिंह बारहठ, जोरावरसिंह बारहठ तीनों एक ही परिवार के क्रांतिकारी थे।
- आऊवा ठाकुर खुशाल सिंह ने खुलकर अंग्रेजों का सामना किया था।
- भगत आन्दोलन के संस्थापक गोविन्दगुरू थे ।
- एकी आन्दोलन के प्रवर्तक मोतीलाल तेजावत थे।
- विजयसिंह पथिक ने बिजौलियॉ किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया था।
- स्वामी दयानंद सरस्वती व आर्य समाज ने राजस्थान में जन–जागृति फैलाई।
- केसरीसिंह बारहठ ने ''चेतावनी रा चूगटयॉ'' नामक सोरठा लिखा।
- राजस्थान केसरी, प्रताप और नवीन राजस्थान समाचार पत्रों ने क्रांति में योगदान दिया था।
- जनजाति आन्दोलन की मुख्य जाति भील थी ।
- स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान का नेतृत्व प्रजामण्डल आन्दोलन के नेताओं ने किया था।
- राजस्थान का एकीकरण सात चरणों में सम्पन्न हुआ था।
- लावा, कुशलगढ व नीमराना चीपशीप रियासतें थी।
- स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय राजस्थान में 22 रियासतें थीं उसमें से 19 स्वतन्त्र व 3 चीपशिप थी।
- अजमेर–मेरवाडा ब्रिटिश नियंत्रित राज्य था।
- राजस्थान की रियासतों का एकीकरण लौह पुरूष सरदार बल्लभ भाई पटेल की दूरदर्शिता, कूटनीति एवं ''रियासत विभाग'' के अथक् प्रयासों से संभव हो सका।
- भारत सरकार के ''रियासत विभाग'' के निर्णयानुसार स्वतंत्र भारत में वे ही रियासतें अपना पृथक अस्तित्व रख सकेंगी, जिनकी आय ''एक करोड़ रूपये वार्षिक'' और जनसंख्या दस लाख या उससे अधिक हो।
- राजस्थान के एकीकरण का प्रथम चरण अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली को मिलाकर ''मत्स्य संघ'' के रूप में पूर्ण हुआ।
- सबसे बड़ा संघ 9 राज्यों बाँसवाड़ा,डूँगरपुर, प्रतापगढ़, कोटा, बूँदी, झालावाड़,किशनगढ़, शाहपुरा व टोंक को मिलाकर ''संयुक्त राजस्थान'' के नाम से बना।
- वृहत राजस्थान की राजधानी ''जयपुर'' को घोषित किया गया तथा राजस्थान के बड़े नगरों का महत्त्व बनाए रखने के लिए कुछ राज्य स्तर के सरकारी कार्यालय यथा हाईकोर्ट जोधपुर में, शिक्षा विभाग बीकानेर में खनिज विभाग उदयपुर में तथा कृषि विभाग भरतपुर में स्थापित किए गये।
- मत्स्य संघ के क्षेत्र भरतपुर व धौलपुर उत्तर प्रदेश (उ.प्र.) में विलय के इच्छुक थे।
- ''सिरोही के विलय'' को लेकर गुजरात एवं राजस्थान के मध्य मतभेद हुए, परन्तु राजस्थान की जनता एवं जननायकों के दबाव के फलस्वरूप सिरोही का विलय'' राजस्थान में ही किया गया।
- राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों द्वारा 1 नवम्बर 1956 को सिरोही के माउन्ट आबू वाले क्षेत्र के साथ–साथ अजमेर व मेरवाड़ा को भी एकीकृत राजस्थान में मिलाकर आधुनिक राजस्थान का निर्माण किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1 राजस्थान में क्रान्ति की शुरूआत कहाँ से हुई ?
(अ) नसीराबाद
(ब) नीमच
(स) मेवाड़
(द) मारवाड

2 आऊवा का संबंध किससे है ?
(अ) रामसिंह
(ब) खुशाल सिंह
(स) लक्ष्मणसिंह
(द) जोरावर सिंह

.3 बिजौलिया किसान आन्दोलन के नेतृत्व कर्ता थे?

(अ) नयनूराम शर्मा

(ब) हरिभाऊ उपाध्याय

(स) विजयसिंह पथिक

(घ) जमनालाल

4 चेतावनी रा चूगटयॉ सोरठा किसने लिखा ?

(अ) प्रतापसिंह बार

संदर्भ ग्रन्थ

बी.एन. मुखर्जी –	स्टडीज इन कुषाण जियनोलॉजी एण्ड क्रोनोलॉजी
एस.के. पाठक –	लाइफ ऑफ नागार्जुन
पाउलमेंशन –	एनसिएन्ट इण्डिया एण्ड इण्डियन सिविलाइजेशन
के.पी. जैसवाल –	हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
के.सी. ओझा –	हिस्ट्री ऑफ फारेन इन एनसिएन्ट इण्डिया
भावतशरण उपाध्याय –	वृहतर भारत
डॉ. गोपीनाथ शर्मा–	राजस्थान का इतिहास
रघुवीर सिंह–	दुर्गादास राठौड
पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ–	मारवाड़ का इतिहास
हीरानन्द कायस्थ–	तारीख–ए–किला–रणथम्भौर
जगदीश सिंह गहलोत–	राजपूताने का इतिहास
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–	राजपूताने का इतिहास
पं. नरोत्तमदास स्वामी–	बांकीदास री ख्यात
रघुवीर सिंह–	जोधपुर राज्य की ख्यात
राजेन्द्र शंकर भट्ट–	मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर
मीरा मित्र–	महाराजा अजीतसिंह और उनका युग
मुंशी देवीप्रसाद–	औरंगजेबनामा
कविराज श्यामलदास–	वीर विनोद
डॉ. गोपीनाथ शर्मा–	ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान
रघुवीर सिंह–	पूर्व आधुनिक राजस्थान
दीनानाथ दुबे–	भारत के दुर्ग
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, –	ओझा निबन्ध–संग्रह (भाग–2) :
विद्याद्यर महाजन तथा सावित्री महाजन–	भारत 1526 से आगे
बी.एल. ग्रोवर, यशपाल–	आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन
डॉ. सत्या राय–	भारत में उपनिवेशवाद
डॉ मोहन लाल साहू–	भारत का इतिहास एंव संस्कृति 1526–1950
प्रो. टी. के. माथुर–	भारत का इतिहास एंव संस्कृति 1526–1950
डॉ. के.एस. सक्सेना–	राजस्थान में राजनैतिक जन–जागरण

डॉ. जे.के. ओझा– मेवाड़ का इतिहास

पृथ्वीसिंह मेहता– हमारा राजस्थान

डॉ. गोपीनाथ शर्मा– राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास

डॉ.बी.एल. पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम

डॉ. रामप्रसाद व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास

डॉ. मुरारी लाल शर्मा– राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

पट्टाभि सीतारम्मैया– दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस

सुभाषचंद्र बोस – द इंडियन स्ट्रगल

अयोध्या सिंह– भारत का मुक्ति संग्राम

विपिन चंद्र– भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

रामलखन शुक्ल (सं.)– आधुनिक भारत का इतिहास

अबुल कलाम आजाद– इंडिया विंस फ्रीडम

गुलाबराव महाराज– विश्व व्यापिनी हिन्दी संस्कृति

म्यूर – हिस्टी ऑफ इण्डिया

सरवाल्टर रैले – हिस्टी ऑफ वर्ल्ड

कर्नल अल्काट– थियोसोफी, मार्च 1881 का अंक

मैक्समूलर – इण्डिया व्हाट केन इट टीच अस

मसूदी– मिडास ऑफ दी गोल्ड

डॉ आशीष आसोपा– अतीत से साक्षात्कार

डॉ. के.जी.शर्मा, एच.सी.जैन– भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

शर्मा, शल्य, शर्मा– प्राचीन भारत का इतिहास

शिवकुमार मिश्रा– राजस्थानी संस्कृति :परम्परा,कला एवं साहित्य

शिवकुमार गुप्त– भारतीय संस्कृति के मुख्य आधार

वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स

शिवकुमार आस्थाना– भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य

शरद् हेबालकर– भारतीय संस्कृति का विश्व संचार

सुरेश सोनी– हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत

देवेन्द्र सिंह चौहान– पुण्य सलिला सरस्वती नदी

राजेन्द्र प्रसाद मिश्र– वैदिक ऋषि परम्परा एवं वंशावलियां

बाबूलाल भाट– वंशावली लेखन परम्परा में 20 वीं शताब्दी के बून्दी राज्य का सामाजिक व आर्थिक जीवन

शब्दावली

रेजीडेन्ट–	देशी राज्यों में अग्रेंजी सरकार का प्रतिनिधि
छावनी–	सेना के रहने का स्थान
लाग–बाग–	लगान की लागत
बेगार–	बिना पारिश्रमिक दिये कार्य करवाना
हाड़ौती –	कोटा, बूंदी, बारॉ व झालावाड़ का क्षेत्र
प्रजा मण्डल–	आम नागरिक का लोकतांत्रिक संगठन
मत्स्य संघ–	भरतपुर, अलवर व करौली का क्षेत्र
साम्प्रदायिक–	सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित
अधिनियम–	कानून
अन्तरिम–	अस्थायी व्यवस्था
गाजी–	धर्म युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला योद्धा।
चौथ–	शिवाजी द्वारा पड़ोसी राज्यों से लिया जाने वाला उनकी आय का 1/4 अंश।
फरमान–	राजाज्ञा
फतवा–	किसी धार्मिक या न्यायिक प्रश्न पर शरियत के अनुसार निर्णय
मनसब–	मुगल सेना एवं प्रशासन से सम्बन्धित पदानुक्रम
मंजनीक–	पत्थर फेंकने का यंत्र
पशेब–	विशेष प्रकार के चबुतरे, जो किले की ऊँचाई तक पहुँचने के लिये बनाए जाते थे।
मगरबी–	ज्वलनशील पदार्थ फैंकने का यंत्र
टर्रादा–	पत्थरों की वर्षा करने वाला यंत्र
फदिया–	चौहानों के पतन से 1540 ई. के मध्य राजस्थान में प्रचलित स्वतन्त्र मुद्रा शैली।
बैक्ट्रियन–	मध्य एशिया की यूनानी शाखा
श्रेणियाँ–	व्यापारियों के वर्ग
परिनिर्वाण–	सांसारिक उलझन से मुक्ति
प्रतिरोध–	मुकाबला करना
विक्रमादित्य–	अत्यन्त पराक्रमी उपाधि
सहिष्णुता–	सहन करने की क्षमता
रेशम मार्ग–	चीन से रोम तक जाने वाला व्यापारिक मार्ग
संधिकाल–	एक व्यवस्था पतन की ओर एवं दूसरी व्यवस्था का शुरूआती दौर
विश्वसंचार–	विश्व में व्याप्त
गोदीवाड़ा–	बन्दरगाह
विलीनीकरण–	समाहित हो जाना
सीमान्त–	सीमा का अन्तिम क्षेत्र
रजाकार–	हैदराबाद के शासक के कर्मचारी